मुद्रक—
जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस
चौमुखीपुल, रतलाम.

साहित्य शिक्षण संचालक, साहित्य रत्न मुनि श्री

सुशील कुमारजी शास्त्री के उद्गार

विश्व मे उभरती हुई दानवता के खिलाफ दहाड़ते हुए पंजाब-नर-केशरीजी महाराज की गर्जनाओ का यह अक्षरात्मक संग्रह है। कितना उपयोगी है ? इसका निर्णय करना मेरे बूते से बाहर की बात है। हॉ, यह मै अवश्य कह सकता हूं कि ये वही तूफानी गर्जनाएँ है जिन्होने लाखों मानवो के अन्तस्तल से बुराई को भगाया है और भलाई उमगाने मे प्रेरणाएं दी है। पंजाब का वह पश्चिमी प्रदेश जहाँ मांस आहार समझा जाता रहा है और शराब शरबत, जहाँ पशु का कतल तो एक तरफ, इन्सानो का खून करना गाजर-मूली काटना माना जाता रहा है उसी दानवीय रणस्थल मे इन व्याख्यानो ने धूम मचाई है और हिंसा के राज्य पर अहिंसा का झंडा फहराया है। इतना ही नहीं. इससे आगे बढ़कर यदि आप सुनना चाहे तो ये ही अन्तर्मन को आलोड़न करने वाले व्याख्यान है जिन्होंने पजाब-केशरी श्री प्रेमचंदजी म. को सिक्खो के दिलो मे गुरु, मुसलमानों में पैगम्बर और ब्राह्मणो के दिलो मे महर्षि बना दिया था। माना कि पजाब भावुक प्रदेश है, इसीलिये प्रत्येक व्याख्यान मे यथार्थ चित्रण के साथ २ भावना

का पुट अधिक प्राञ्जलता से दिया गया है किन्तु यह भी तो एक यथार्थ सत्य है कि मन पर यथार्थ का नहीं सत्यपूत कल्पना का अधिक प्रभाव पड़ता है। आज जहां हमे यथार्थ का प्रचार करना है तो अवश्य बुद्धि की अपेक्षा मानसिक जगत् को आलोडित करना होगा। हृदय-ससार को वदलने मे व्याख्यान (भाषण) कितना महत्त्व रखते है, इसके लिए तो मैं भारतीय स्वाधीनता सग्राम की ओर ध्यान दिलाऊगा कि जिसकी बुनियाद भाषण से रखी गई थी, जिसका परिणाम कोटि २ मानवो मे कितना क्रान्तिकारी रूप में प्रगट हुआ? सारा विश्व वाणी के वल से सचालित होता आया है यह तो एक सूर्य जैसा स्पष्ट सत्य है किन्तु इतना तो मानना पड़ेगा कि वाणी ध्वन्यात्मक रूप मे अनित्य सी रहती है इसलिए उसका प्रभाव अपने सम सामायिक समय मे ही रहता है। यदि उसे अक्षरात्मक रूप दे दिया जाय तो वह मानव जगत् की अक्षय सम्पत्ति है।

इस वात की मुझे प्रसन्नता है कि रतलाम के श्री संघ ने इस सत्य को पहचाना और मानवता की ओर ले जाने वाले इन व्याख्यानों को लिपिवद्ध करा के मानवता की महान् सेवा की।

समूचा संसार साहित्य की प्रतिध्वनि है और साहित्य उसका सच्चा प्रतिबिम्ब। उसमे इस प्रकार के असाम्प्रदायिक खुले विचारों को प्रकाश मे लाया जाएगा तो आने वाली सन्तति उससे लाभ उठाएगी।

इन व्याख्यानों में प्रार्थना की महत्ता है, आत्मा की व्याख्या है, मानव जगत का अन्तर्दर्शन है और है नर में नारायण वनने की शक्ति का प्रदर्शन। भाषा में ओज है, लालित्य है, प्रौढता और प्राञ्जलता का पुट है। भावों में निर्भीकता यथार्थता और भाव प्रवणता का अटूट सामञ्जस्य है।

इन प्रवचनो से वक्ता की अन्तरात्मा का परिचय मिलता है और मनुष्य को महान बनने का उद्बोधन। महाराज श्री का यह अक्षरात्मक रूप मानवता को विश्व विजयिनि बनाने मे असाधारण सहयोग देगा जिसके लिये मै शुभ कामना के साथ २ सफलता के लिये प्रयत्न भी करता रहूँगा। इसी अन्त. कामना के साथ—

जैन स्थानक,
वल्लभ भाई रोड,
विले पारले, बम्बई नं. २४

—. विनीत .—
"मुनि सुशील,
"भास्कर"
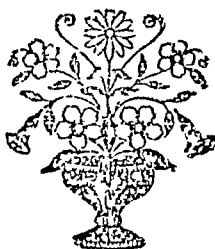
प्रकाशकीय वक्तव्य

स्थानक वासी सम्प्रदाय का बडा सद्भाग्य है कि इसमें समय समय पर उच्च आचार-विचार की परम्परा को कायम रखने वाले उच्च कोटि के आत्म साधक, महान त्यागी, गम्भीर विचारक और परमोपकारी संत जन होते आये है। इस प्रकार की सत-परम्परा और उसकी कठोर साधना के बल पर ही स्थानकवासी समाज जीवित है। हमारे समकालीन ऐसी विभूतियों में प्रसिद्ध विचारक, अहिंसक क्रान्ति के प्रणेता, स्व. आचार्य श्री जवाहरलालजी म., शतावधानी श्री रत्नचन्द्रजी म, पंजाब प्रान्तीय बाल ब्रह्मचारी जैनागम के प्रकाण्ड विद्वान्, दीर्घकाल तक एकान्तर उपवास करने वाले आचार्य श्री सोहनलालजी म. पंजाब केशरी आचार्य श्री काशीरामजी म. चारित्र चूडामणि श्री मयारामजी म., जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म, आदि २ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। स्थानकवासी समाज के अभ्युदय में इनका महत्त्व-पूर्ण योग रहा है।

समय के प्रवाह के साथ स्थानकवासी समाज विभिन्न सम्प्रदायो में विभक्त हो जाने के कारण छिन्न भिन्न सा हो रहा था। समाज के दूरदर्शी नेताओ ने इस ओर ध्यान दिया। बदलते हुए युग को दृष्टि मे रखकर उन्होंने स्थानकवासी समाज के संगठन की दिशा में प्रयत्न आरम्भ किये। अजमेर का महान् ऐतिहासिक साधु सम्मेलन और वीर संघ की योजना इसी दिशा में किये गये प्रयत्न हैं। इन सब प्रयत्नों की सफलता अभी २ सादड़ी में हुए साधु सम्मेलन में दृष्टिगोचर हुई। सादड़ी के प्राङ्गण मे एकत्रित हुए पूज्य मुनिराजों ने अपनी परम्परागत पदवियों का परित्याग किया और 'वर्धमान स्थानक वासी जैन श्रमण संघ' की

स्थापना कर अनुपम आदर्श उपस्थित किया। एकीकरण का यह भव्य प्रसंग स्थानकवासी इतिहास का सुनहरा पृष्ठ है।

सादडी के साधु-सम्मेलन को सफल बनाने में जिन २ बड़ी २ विभूतियो ने अथक परिश्रम किया उनमे परमश्रद्धेय, बाल ब्रह्मचारी स्व मुनि श्री वृद्धिचन्द्रजी म. सा. के सुशिष्य जैन भूषण, पंजाब केशरी प्रसिद्ध वक्ता पं मुनि श्री प्रेमचन्द्रजी म सा का प्रमुख स्थान है। महाराज श्री लुधियाना (पजाब) से उग्र विहार करके मार्ग में होने वाले अनेक परीषहों को सहन करते हुए सादडी पधारे और वहाँ श्रमण सघ की सफलता के लिए अपनी उपाध्याय पदवी का सहर्ष त्याग कर दिया।

साधु सम्मेलन के पवित्र अवसर पर रतलाम का श्री संघ सैकडो नर नारियो की सख्या मे रेल, भोजनादि की स्वतत्र व्यवस्था कर सादडी पहुँचा था। पूज्य मुनिराजो द्वारा एक अखण्ड श्रमण सघ के निर्माण की घोषणा का सकल श्री सघो ने अत्यन्त हर्ष के साथ स्वागत किया। चातुर्मास का काल समीप होने से रतलाम श्री सघ ने अपने यहा की विशेष परिस्थिति को लक्ष्य मे रखकर किसी विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न मुनिराज का अपने यहा चातुर्मास कराने का विचार किया। श्री सघ की दृष्टि पजाब केशरी प्रखर वक्ता पं मुनि श्री प्रेमचन्द्रजी म. की ओर गई और उनका चातुर्मास रतलाम में करवाने का प्रयत्न किया गया। इस प्रयत्न मे हमें सादड़ी सघ के सहयोग की भी याचना करनी पडी क्यो कि महाराज श्री का चातुर्मास सादड़ी मे होना निश्चित सा हो गया था पर हमारे प्रयत्नो व सादड़ी सघ की उदारता से हमे महाराज श्री के रतलाम चातुर्मास की स्वीकृति प्राप्त हो ही गई। समय अधिक शेष न रहने पर भी लगभग ३०० मील का लम्बा विहार कर मुनि श्री का रतलाम मे पदार्पण हुआ। हमे यह सौभाग्य प्रदान करने के लिए हम मुनि श्री के अत्यन्त आभारी है।

मुनि श्री के आकर्षक व्यक्तित्व और ओजस्विनी वाणी ने रतलाम के नागरिको को मंत्रमुग्ध सा बना लिया। महाराज श्री ने रतलाम की परिस्थिति का अध्ययन कर अपने सामयिक तेजस्वी प्रवचनो द्वारा नवीन वातावरण की सृष्टि कर दी। महाराज श्री की ओजस्विनी वाणी मे कोई अनोखा चमत्कार है। महाराज श्री अपने प्रवचनो मे शास्त्रीय गूढ़ सिद्धान्तो का प्रतिपादन इस आकर्षक शैलि से करते कि वह तत्त्व श्रोताओं को सहज ही हृदयंगम हो जाते। शास्त्रीय तत्त्वो की ऐसी मनोरंजक व्याख्या मुनि श्री की अनुपम प्रतिभा को प्रकट करती है। मुनि श्री अपने प्रवचनों मे दर्शन (सम्यक्त्व) की विशुद्धि पर विशेष बल देते है। मुनि श्री के प्रवचनो का प्रसार किया जाय तो वे समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी और हितावह हो सकते हैं। इसी आशय से मुनि श्री के प्रवचनों को लिपि बद्ध कर लेने का विचार हुआ। पं. बसन्तीलालजी नलवाया 'न्यायतीर्थ' ने मुनि श्री के प्रवचनो को लिपि बद्ध कर सम्पादित किया। उन प्रवचनों का थोड़ा सा भाग 'प्रेमसुधा' के प्रथम भाग के रूप मे पाठक के सन्मुख उपस्थित करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होती है। इन प्रवचनो में महाराज श्री के भावो और शब्दों को ज्यो का त्यों देने का अधिक से अधिक प्रयत्न किया गया है।

प्रेम सुधा का यह प्रथम भाग पाठकों के हाथ मे है और मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि पाठक गण इसको अपना कर अधिक से अधिक लाभ उठाएँगे। अगले भागों के प्रकाशन के लिए भी यथा संभव शीघ्र प्रयास किया जायगा।

प्रकाशक

समर्पण

श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमणसंघ के
वर्त्तमानाचार्य, जैन धर्म दिवाकर, जैनागम
रत्नाकर, साहित्यरत्न परमपूज्य श्री
१००८ श्री आत्मारामजी महाराज
के पुनीत कर-कमलों से
सादर समर्पित !

मुनि "प्रेम-"
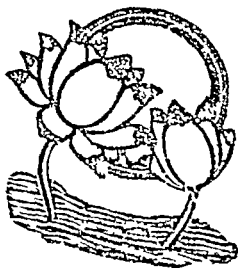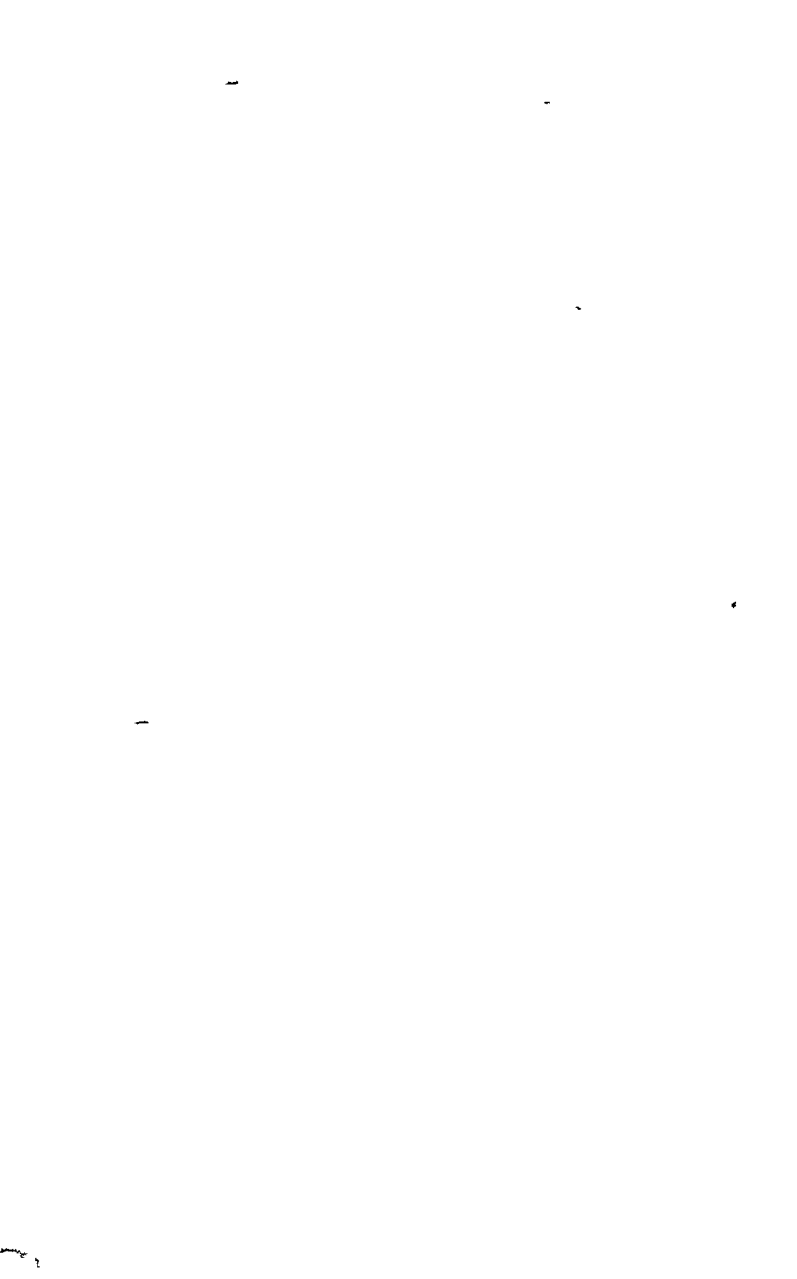
विषयानुक्रमणिका

साध्य और साधन

अरिहन्त अरिहन्त अरिहन्त अरिहन्त
अरिहन्त अरिहन्त अरिहन्त भगवन्त

उपस्थित सज्जनो ! एवं देवियो !

अभी आपके सामने देवाधिदेव अरिहन्त भगवान् की स्तुति का मंगलमय उच्चारण किया गया है। इस स्तुति में कवि ने महामहिमामय अर्हन्त प्रभु की महत्ता का दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है। अर्हन्त प्रभु की गुण-गरिमा आकाश की तरह अनन्त है। उसका न ओर है न छोर। उसका पूरा२ वर्णन करना असम्भव है। वह लेखनी और कथनी की परिधि से बाहर की वस्तु है। न उसका सम्पूर्ण लेखन हो सकता है और न जिह्वा

से वर्णन ही। वह वाणी और लिपि दोनों से परे की वस्तु है। क्योंकि वाणी और लिपि ससीम है और प्रभु की गुणावलियाँ असीम हैं। वाणी सान्त है और गुणावली अनन्त है। जबान एक है और प्रभु के गुण अनन्त हैं।

प्रभु के अनन्त गुणों का सम्पूर्ण वर्णन करना मानव की शक्ति से बाहर की वस्तु है। साधारण मानव की तो बात और बिसात ही क्या स्वयं अनन्तज्ञानी केवलज्ञानी भी उसका वर्णन करने मे असमर्थ हैं। वे अपने अनन्तज्ञान द्वारा देवाधिदेव के अनन्तगुणों का ज्ञान कर लेते हैं परन्तु बयान और बखान करने की शक्ति उनमें भी नहीं होती। इसलिये शास्त्रकारों ने कहा है कि सर्वज्ञ जितने ज्ञेय पदार्थों को अपने ज्ञान से जानते हैं और अनुभव करते हैं उसका अनन्तवाँ भाग ही वे वाणी के द्वारा कह सकते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि अनन्तज्ञानी भी अर्हन्त प्रभु के अनंत गुणो का पूरा २ वर्णन करने मे समर्थ नहीं हैं तो हम और आप जैसो की तो बात ही क्या है ?

उपर्युक्त बात को किसी संस्कृत कवि ने निम्न शब्दो में व्यक्त की है:—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥

पहाड़ जितना स्याही का ढेर हो, उसे समुद्र रूपी दवात में घोलकर वृक्ष की टहनियों को कलम बनाकर और पृथ्वी को कागज बनाकर यदि साक्षात् सरस्वती सर्वदा लिखती ही रहे तो भी हे प्रभो ! आपके गुणों का पार पाने मे वह समर्थ नहीं हो सकती।

कर्मभूमि मे उत्पन्न होने वाला, करोड़ पूर्व की आयु वाला मनुष्य यदि उम्र भर सकल वनराजि की कलम, समुद्र की स्याही और पृथ्वी को कागज बना कर लिखता ही रहे तो भी प्रभु के गुण नहीं लिखे जा सकते। एक नहीं करोड़ जिह्वाओं से भी उनका पूरा गुण गान नहीं किया जा सकता है।

विश्व में जितने रजकण हैं उनसे अनन्तगुण अधिक प्रभु के गुण है। रजकणो को कोई गिनना चाहे तो वे भी नहीं गिने जा सकते हैं। रजकण स्थूल है तदपि वे गिनती मे नहीं आ सकते हैं। वे असंख्य है। परन्तु प्रभु के गुण तो अनन्त हैं। वाणी और लेखनी की शक्ति तो बहुत मर्यादित है। विश्व में एक नाम-संज्ञा के असंख्य पदार्थ हैं। वे भी वाणी और लेखनी मे आबद्ध नहीं किये जा सकते है तो प्रभु की अनन्त गुण राशि उस मर्यादित क्षेत्र मे आबद्ध किस प्रकार हो सकती है ? शास्त्र-कार ने कहा है कि— यह जम्बूद्वीप-जिसमें हम रहते हैं इस नाम के एक नहीं असंख्यात द्वीप है। धातकीखंड और लवण समुद्र भी असंख्यात हैं। इसी तरह प्रत्येक नाम वाले द्वीप समुद्र असंख्यात२ है। जितने शुभवर्णवाले, शुभगंधवाले, शुभरसवाले, शुभस्पर्शवाले

और शुभनामवाले तत्त्व हैं उतने द्वीप समुद्र हैं। अर्थात् वे संख्यातीत हैं और उनका वर्णन नहीं किया जा सकता है तो प्रभु के अनन्त गुणों का वर्णन कैसे हो सकता है? प्रभु के गुण अनन्त असीम और शब्दातीत हैं।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि यदि प्रभु के गुणो का पूर्ण रूप से वर्णन हो ही नहीं सकता तो कवियों और श्रद्धालु भक्तजनो ने प्रभु के गुणानुवाद करने का व्यर्थ प्रयास क्यों किया और हमे भी यह व्यर्थ प्रयास क्यों करना चाहिए? इसका उत्तर यह है कि—मान लीजिए किसी व्यक्ति के पास बहुत थोड़ी संपत्ति है, वह लखपति या करोड़पति नहीं बन सकता है तो क्या उसे अपनी शक्ति के अनुसार भी श्रम और व्यवसाय नहीं करना चाहिये? यदि वह सोच ले कि मैं लखपति-करोड़पति तो बन ही नहीं सकता हूँ तो कमाई और श्रम क्यों करूँ, तो क्या उसका ऐसा सोचना ठीक होगा? कदापि नहीं। जिसके पास जितना सामर्थ्य है उससे ही व्यवसाय करना पड़ता है। अपनी पूंजी ही काम आने वाली है। अतः यदि हम प्रभु के सम्पूर्ण गुणो का वर्णन और कीर्त्तन नहीं कर सकते हैं तो हमें अपनी शक्ति के अनुसार उनका गुणानुवाद करना ही चाहिए।

अनन्तज्ञानी के अनन्त गुणो को अनन्तज्ञानी ही जान सकते हैं। बेशक, हम भी जान सकते हैं परन्तु हम प्रत्यक्ष से नहीं आगम और अनुमान से जान सकते हैं। अनन्तज्ञानी के कहे हुए आगम और विश्वास के आधार से हम जान सकते हैं।

शास्त्राधार और विश्वास के आधार पर हम उन्हे जानते और मानते है। जानना ज्ञान का गुण है और उसे मानना दर्शन का गुण है। हमारे लिए यह शास्त्राधार और दर्शनाधार माननीय है।

अल्पज्ञानियो के लिए ही शास्त्र आधार भूत होते है। केवलज्ञानी तो शास्त्रातीत होते हैं। वस्तुतः, वे तो स्वयं ही शास्त्र रूप होते है। वे शास्त्र के कायल नहीं होते। उनका पूर्ण विकसित जीवनस्तर शास्त्रों से आगे बढ़ा हुआ होता है। शास्त्र उनके लिए आधारभूत होते है जिनमे शास्त्रों मे वर्णित पूरा ज्ञान नहीं होता। जो पूर्ण ज्ञानी है उन्हे शास्त्र की आवश्यकता नहीं होती। जो व्यक्ति जिस शास्त्र मे वर्णित बातों से अधिक ज्ञान रखता है उसे शास्त्राधार की क्या आवश्यकता है? जिसमे अल्पज्ञान होता है उसके लिए शास्त्र की आवश्यकता होती है।

जिसने ज्ञानावरणीय कर्म को पूर्ण क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया है उसके लिए शास्त्रो की कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु जिसने ज्ञानावरणीय का क्षय नहीं किया किन्तु क्षयोपशम किया है उसके लिए शास्त्रो के आधार की आवश्यकता होती है।

विश्व के प्राणियो मे ज्ञान का तारतम्य पाया जाता है। सब व्यक्ति चाहते हुए भी समान विद्वान् और ज्ञानवान् नहीं बन सकते हैं। सब मनुष्य चाहते हैं कि हम ज्ञानी बनें, ज्ञान प्राप्त करें और ज्ञान की दौड़ मे किसी से पीछे न रहे। ऐसा चाहते हुए भी

और शुभनामवाले तत्त्व हैं उतने द्वीप समुद्र हैं। अर्थात् वे संख्यातीत है और उनका वर्णन नहीं किया जा सकता है तो प्रभु के अनन्त गुणों का वर्णन कैसे हो सकता है? प्रभु के गुण अनन्त असीम और शब्दातीत हैं।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि यदि प्रभु के गुणो का पूर्ण रूप से वर्णन हो ही नहीं सकता तो कवियों और श्रद्धालु भक्तजनो ने प्रभु के गुणानुवाद करने का व्यर्थ प्रयास क्यो किया और हमे भी यह व्यर्थ प्रयास क्यों करना चाहिए? इसका उत्तर यह है कि—मान लीजिए किसी व्यक्ति के पास बहुत थोड़ी संपत्ति है, वह लखपति या करोड़पति नहीं बन सकता है तो क्या उसे अपनी शक्ति के अनुसार भी श्रम और व्यवसाय नहीं करना चाहिये? यदि वह सोच ले कि मै लखपति-करोड़पति तो बन ही नहीं सकता हूँ तो कमाई और श्रम क्यो करूँ, तो क्या उसका ऐसा सोचना ठीक होगा? कदापि नहीं। जिसके पास जितना सामर्थ्य है उससे ही व्यवसाय करना पड़ता है। अपनी पूंजी ही काम आने वाली है। अतः यदि हम प्रभु के सम्पूर्ण गुणो का वर्णन और कीर्त्तन नहीं कर सकते हैं तो हमे अपनी शक्ति के अनुसार उनका गुणानुवाद करना ही चाहिए।

अनन्तज्ञानी के अनन्त गुणो को अनन्तज्ञानी ही जान सकते हैं। वेशक, हम भी जान सकते है परन्तु हम प्रत्यक्ष से नहीं आगम और अनुमान से जान सकते हैं। अनन्तज्ञानी के कहे हुए आगम और विश्वास के आधार से हम जान सकते है।

शास्त्राधार और विश्वास के आधार पर हम उन्हे जानते और मानते हैं। जानना ज्ञान का गुण है और उसे मानना दर्शन का गुण है। हमारे लिए यह शास्त्राधार और दर्शनाधार माननीय है।

अल्पज्ञानियों के लिए ही शास्त्र आधार भूत होते है। केवलज्ञानी तो शास्त्रातीत होते हैं। वस्तुतः, वे तो स्वयं ही शास्त्र रूप होते है। वे शास्त्र के कायल नहीं होते। उनका पूर्ण विकसित जीवनस्तर शास्त्रा से आगे बढ़ा हुआ होता है। शास्त्र उनके लिए आधारभूत होते हैं जिनमे शास्त्रो मे वर्णित पूरा ज्ञान नहीं होता। जो पूर्ण ज्ञानी है उन्हे शास्त्र की आवश्यकता नहीं होती। जो व्यक्ति जिस शास्त्र में वर्णित बातों से अधिक ज्ञान रखता है उसे शास्त्राधार की क्या आवश्यकता है? जिसमे अल्पज्ञान होता है उसके लिए शास्त्र की आवश्यकता होती है।

जिसने ज्ञानावरणीय कर्म को पूर्ण क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया है उसके लिए शास्त्रो की कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु जिसने ज्ञानावरणीय का क्षय नहीं किया किन्तु क्षयोपशम किया है उसके लिए शास्त्रो के आधार की आवश्यकता होती है।

विश्व के प्राणियो मे ज्ञान का तारतम्य पाया जाता है। सब व्यक्ति चाहते हुए भी समान विद्वान् और ज्ञानवान् नहीं बन सकते हैं। सब मनुष्य चाहते हैं कि हम ज्ञानी बनें, ज्ञान प्राप्त करें और ज्ञान की दौड़ मे किसी से पीछे न रहे। ऐसा चाहते हुए भी

एक व्यक्ति तो थोड़े में ही अधिक ग्रहण कर लेता है और एक व्यक्ति पुनः २ समझाने पर भी नहीं समझ पाता है। एक व्यक्ति अल्प श्रम से विद्वान् बन जाता है और उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है और दूसरा व्यक्ति कठोर श्रम करने पर भी विद्या क्षेत्र मे पीछे रह जाता है वह परीक्षा में अनुत्तीर्ण ही रहता है। बाह्य साधन सामग्री समान मिलने पर भी फल में भिन्नता देखी जाती है। एक ही अध्यापक पक्षपात रहित होकर दो बालकों को शिक्षण देता है, पुस्तकादि सामग्री दोनो को समान सुलभ है, खान पान आदि एक-सा है, दोनो श्रम भी करते है फिर भी उनमे से एक बालक तो अल्प श्रम से ही विद्वान् बन जाता है और दूसरा बालक अधिक श्रम करने पर भी विद्वान् नहीं बन पाता है। इसका कोई कारण अवश्य होना चाहिए। इसका कारण है अन्तरंग साधक-बाधक शक्तियो का मिलना।

जिस व्यक्ति को साधक शक्ति मिली होती है वह अल्पश्रम से ही आगे बढ़ता चला जाता है परन्तु जिसे बाधक शक्ति मिली होती है वह पुरुषार्थ करते हुए भी असफल ही होता है। इन साधक और बाधक शक्तियो के कारण ही उत्थान और पतन होता है। साधक शक्ति वह है जो साधना-क्षेत्र में सहयोग देने वाली है, जीवन--स्तर को ऊँचा उठाने वाली है, ज्ञान--दर्शन--चारित्र की दृष्टि से ऊपर उठाने वाली है। बाधक शक्ति वह है जो साधना मे विघ्न पैदाकर असफल बनाती है। साधक शक्ति सफलता का कारण है और बाधक-शक्ति विफलता का।

विश्व मे बाधक साधन अधिक हैं और साधक साधन कम है। अच्छी चीज़ कम ही होती है सामान्य चीजें मात्रा में अधिक होती है। मिट्टी की मात्रा बहुत अधिक है, लोहा उससे कम है, पीतल, कांसी उससे भी कम है, चांदी उनसे भी कम है, सोना और भी कम है और हीरे-जवाहरात रत्नादि बहुत ही कम है। मात्रा में-प्रमाण मे ये कम हे परन्तु गुणों मे उत्तरोत्तर अधिक है इसीलिए इनका उत्तरोत्तर अधिक महत्त्व है। कोयला और हीरा-दोनो पृथ्वीकाय हैं परन्तु दोनो के महत्त्व मे कितना अन्तर है। एक हीरे के कण से कितनी ही कोयले की गाडियां खरीदी जा सकती हैं। कहाँ मिट्टी की कीमत और कहाँ सोने-चांदी की कीमत!

तात्पर्य यह है कि विश्व में अशुभ परमाणु अधिक हैं। शुभ परमाणु मात्रा मे कम है। इसी तरह साधक शक्तियाँ कम है और बाधक शक्तियाँ अधिक है। ये बाधक शक्तियाँ ही मानव को आगे बढ़ने से रोकती है। साधक-बाधक शक्तियो के कारण ही अनुकूल-प्रतिकूल साधन प्राप्त होते हैं।

साधन दो प्रकार के होते है। बाह्य साधन और अन्तरंग साधन अथवा द्रव्य साधन और भाव साधन। अथवा जड़ साधन और चेतन-साधन। लौकिक और लोकोत्तर-दोनो क्षेत्रो में साधनों की आवश्यकता होती है। साधनो के बिना साधक को साध्य की प्राप्ति नही होती है। साधक, साधन और साध्य का त्रिवेणी संगम

हो तभी सिद्धि होती है अन्यथा नहीं। इनमे से किसी एक की भी कमी रहती है तो सफलता नही मिल सकती है।

साधना करने की तमीज जिसमें है वह साधक है। साधक आत्मा है। साधक सदा चैतन्ययुक्त ही होता है।

साध्य वह है जिसे प्राप्त किया जाय। हमारा परम और चरम साध्य है-सिद्धि, मुक्ति, और स्वरूप-प्राप्ति।

इस साध्य की सिद्धि के लिए दोनो प्रकार के साधनो की आवश्यकता है। द्रव्य-साधनो की भी आवश्यकता है और भाव साधनो की भी आवश्यकता है। चेतनमय साधनो की आवश्यकता है और जड़ अर्थात् जीवनोपयोगी पुद्गलादि साधनो की भी आवश्यकता है। दोनो प्रकार के साधनो का अपना अलग २ महत्त्व और स्थान है। परन्तु आवश्यकता तो दोनो प्रकार के साधनो की रहती है।

भद्र पुरुषो! यह सुनकर चौंकिये नही! चल-विचल न बनिये। हम चतन्योपासक है परन्तु जड़ से इतनी नफरत नहीं करते हैं। हम इससे घबराते नही हैं। साध्य-प्राप्ति तक जड़ और चेतन दोनो प्रकार के साधनों की आवश्यकता रहती है। इन दोनों मे से यदि एक का अभाव हो तो साध्य की निष्पत्ति नहीं हो सकती। दोनों का अलग २ स्थान और महत्त्व है। उस पर यदि ध्यान न दें तो गड़बड़ी पैदा हो जाती है। महत्त्व निकल जाता है और लाभ के बदले हानि हो जाती है। दोनों का यदि अपने २

स्थान पर लाभ लिया, इनको यथोचित महत्त्व दिया तो वे निस्संदेह कार्यसाधक हो सकते है।

धर्माराधन के लिए जैसे चेतनमय साधनो की आवश्यकता रहती है वैसे ही बाह्य साधन वस्त्र, पात्र, भोजनादि की भी आवश्यकता रहती है। भोजनादि के अभाव में शरीर-निर्वाह नहीं हो सकता और संयम यात्रा का निर्वाह भी नहीं हो सकता अतः भोजनादि जड़ साधनो का भी धर्माराधन में अपना स्थान है परन्तु इसलिए रोटीमाता, चक्कीमाता आदि कह कर उनके सामने मस्तक टेकना उचित नहीं हो सकता। भोजनादि जड़ साधनों की आवश्यकता मानने पर भी उनको यथोचित ही महत्त्व मिलना चाहिए। इससे आगे बढ़कर उन जड साधनो को ही साध्य मानने की भूल मे पड जाना सर्वथा अनुचित है। तात्पर्य यह है कि जड़ और चेतन—दोनो प्रकार के साधनो की साध्य-सिद्धि मे आवश्यकता है परन्तु दोनो का स्थान और महत्त्व पृथक् २ है।

टेलिग्राफ गट्‌गट्-गट्‌गट् करता है। उसके संकेतों को जो जानता है वह उससे अर्थ निकाल लेता है। जो उसके संकेतों को नहीं समझता है उसके लिए-उसका कोई महत्त्व नही रहता है। इसी प्रकार जो जड़ साधनों का यथा योग्य उपयोग करना जानता है उसके लिए ही वे जड़ साधन उपयोगी हो सकते हैं। अन्यथा उनका कोई महत्त्व नहीं रहता है। इस तरह जड़ और चेतन-दोनों प्रकार के साधनों की आवश्यकता रहती है और दोनो का अपनी २ सीमा मे पृथक् २ महत्त्व है। तीर्थङ्कर देव भी दोनों प्रकार के साधनो को लेकर चले है।

जड और चेतन साधनो में अवधि का भी अन्त है। जड़ साधनो की तभी तक उपयोगिता और आवश्यकता है जब तक साध्य की प्राप्ति नहीं हो जाती। साध्य की प्राप्ति होने पर जड़ साधन छूट जाते है। पर चेतन साधन तो साध्य की प्राप्ति होने पर भी बने रहते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र के २८ वे मोक्षमार्ग नामक अध्ययन मे मोक्ष रूप साध्य की सिद्धि के लिए साधन बतलाये गये है। मोक्ष साधना का कार्य (फल) है, आराध्य भाव है और परम एव चरम साध्य है। इस साध्य को प्राप्त करने के लिये मार्गाध्ययन की आवश्यकता है। जिस व्यक्ति को जहाँ जाना है उसे वहाँ के मार्ग का ज्ञान करना आवश्यक होता है। ऐसा करने से ही वह साध्य पर पहुँच सकता है अन्यथा कहीं का कहीं चला जाएगा। जिसे इन्दौर जाना है उसे इन्दौर के मार्ग का ज्ञान होगा तब ही वह इन्दौर पहुँच सकेगा। यदि इन्दौर जाने की इच्छा वाला व्यक्ति मार्गाध्ययन न करके दिल्ली जाने वाली गाड़ी में बैठ जाय तो क्या वह इन्दौर पहुँच जायगा? कभी नहीं। इसलिए गन्तव्य स्थान पर पहुँचने के अभिलाषी व्यक्ति को पहले मार्ग का अध्ययन करना चाहिए। मार्ग का बराबर अध्ययन न करने से गड़बड़ी हो रही है। जो मोक्ष मार्ग का अध्ययन नहीं करते वे मोक्ष को प्राप्त नही कर सकते। अतः मुमुक्षु पुरुषो को मोक्ष मार्ग का अध्ययन करना चाहिए।

मोक्ष के मार्ग का निरूपण करते हुए शास्त्रकार कहते है:-

मोक्ख-मग्गगइं तच्चं, सुणेह जिणभासियं।
चउकारणसंजुत्तं नाण-दसण-लक्खणं॥
नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा।
एस मग्गु त्ति पराणत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं॥

उक्त गाथाओं में मोक्ष के मार्ग का निर्देश किया गया है। मार्ग कहिये, कारण कहिये उपाय कहिए—सब पर्याय वाची शब्द है अर्थ सब का एक ही है। इसी तरह लक्ष्य, साध्य, कार्य भी पर्याय वाची शब्द हैं। इनके अर्थ में भेद नहीं हैं। यों कहा जा सकता है कि मोक्ष कार्य है और ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप उसके कारण हैं। यह कार्य-कारण रूप से निरूपण हुआ। मोक्ष साध्य है और ज्ञान दर्शन चरित्र, तप उसके साधन है यह साध्य साधन रूप से निरूपण हुआ। भाव दोनो का एक ही है।

हाँ, तो शास्त्रकार ने मोक्ष के चार साधनो का प्ररूपण किया है। वे चार हैं—१ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र और ४ तप। ज्ञान का अर्थ है अपने स्वरूप और लक्ष्य को, साध्य और साधन को कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को भलीभांति जानना। दर्शन का अर्थ है—जाने हुए तत्त्व पर दृढ़ विश्वास रखना। उस पर दृढ़ श्रद्धा रखना दर्शन है। सम्यक् जाने हुए और अडोल श्रद्धा के साथ माने हुए तत्त्व के अनुसार आचरण-प्रवृति करना चारित्र है। नवीन बाधक शक्तियो का आगमन रोक देना चारित्र है। और पुरानी रही हुई बाधक शक्तियो को क्षीण करना तप कहलाता है।

इन चारो कारणों से मोक्ष रूपी कार्य की निष्पत्ति होती है अथवा इन चारों साधनो से मोक्ष-साध्य की सिद्धि होती है।

उपर्युक्त चारों साधनों का संयोग होता है तभी मोक्ष हो सकता है। इनमे से किसी एक की भी कमी हो तो कार्य नही बन सकता है। रसायन बनाने के लिए आवश्यक समग्र साधनों का संयोग अनिवार्य है। एक भी अंग की कमी हो तो रसायन नहीं बन पाता है। रसायन की सब सामग्री हो परन्तु उनका यथा-योग्य प्रमाण में सयोग न हो तो भी रसायन नहीं बन सकता है। सम्पूर्ण अंग मौजूद हो और उचित मात्रा में उचित विधि से उनका संयोग किया जाय तभी उत्तम रसायन तैयार होता है। यही बात मुक्ति रूपी रसायन के लिए समझनी चाहिए। ज्ञान-दर्शन चारित्र और तप का समुचित संयोग हो तभी मुक्ति प्राप्त हो सकती है। एक अंग की भी कमी रहती है तो साध्य सिद्ध नहीं हो सकता है।

आपको जहाँ जाना है वहाँ का किराया यदि एक रूपया लगता है तो एक रूपया पूरा होने पर ही आप वहाँ जा सकते हैं। यदि एक दमड़ी भी कम हो तो वहाँ आप नहीं पहुँच सकते है। साधनो में अपूर्णता हो तो साध्य कभी पूरा नहीं हो सकता है। जितना माल खरीदना है उतने पैसे पास में होने चाहिए तभी माल खरीदा जा सकता है। इसी तरह साधन पूरे होंगे तो ही साध्य पूरा हो सकता है।

मोक्ष के लिए ज्ञान भी कारण है, दर्शन भी कारण है, चारित्र भी कारण है और तप भी कारण है। इसी लिए शास्त्रकार ने "चउकारणसंजुत्त" कहा है। मोक्ष की ओर ले जाने वाले मार्ग को, मोक्ष के साधनों और उपायो को जानने के लिए ज्ञान की अनिवार्यता है। जाने हुए तत्त्व पर अडोल श्रद्धा होना, उसमें चल-विचलता न लाना दर्शन है। इसका होना नितान्त आवश्यक है। इस विशुद्ध श्रद्धा के बिना मोक्ष हो ही नहीं सकता। सम्यग्दर्शन मोक्ष की मुख्य कुञ्जी है। सम्यग्ज्ञान के द्वारा मोक्ष के स्वरूप और साधनो को जानने के बाद और सम्यग्दर्शन के द्वारा उस पर दृढ श्रद्धा करने के पश्चात उस दिशा मे प्रवृत्ति करना, उस मार्ग पर चलने के लिए कदम बढ़ाना चारित्र है। चारित्र के द्वारा नवीन बाधक शक्तियों का आगमन रुक जाता है। नवीन कर्म का बंध नहीं होता है। और तप के द्वारा पहले के कर्मों का क्षय हो जाता है। अत: पुरानी बाधक शक्तियों को क्षीण करने के लिए तप की आवश्यकता है।

किसी भरे हुए तालाब को यदि खाली करना है तो पहले यह देखना होगा कि यह कैसे खाली हो सकता है। उसे खाली करने के विधि-विधान तौर-तरीके पहले जान लेना आवश्यक होता है। जब यह जान लिया कि अमुक विधि से, अमुक उपाय से यह खाली होगा तब अपने जाने हुए विधि-विधान और तौर-तरीको पर दृढ़ विश्वास होना भी जरूरी है। अगर अपने तरीको पर दृढ़ आस्था नहीं जमी तो उस कार्य में सफलता नहीं मिल सकती है। तात्पर्य यह हुआ कि किसी कार्य को करने के पहले

उसके तौर-तरीकों का ज्ञान कर लेना आवश्यक है। परन्तु ज्ञान-मात्र से काम नहीं चलने वाला है। इंजिनियर ने किसी मकान के निर्माण हेतु अपने दिमाग में नक्शा तय्यार कर लिया। अमुक जगह कमरे, अमुक जगह हॉल, अमुक जगह स्नानागार, अमुक जगह शयनागार, अमुक जगह भोजनालय; इसी तरह उसने मकान का पूरा नक्शा तय्यार कर लिया। दिमाग में सारा मकान बन कर तय्यार हो गया परन्तु यदि वह इतने मात्र से संतोष मान ले और उसमें सोना, बैठना, खाना, पीना, आराम करना चाहे तो क्या हो सकता है? क्या उस नक्शे के मकान से सर्दी-गर्मी से बचाव हो सकता है? कदापि नहीं। उसके लिए तो ईंट, चूना, मिट्टी, पत्थर, कारीगर, राज आदि की आवश्यकता है। वे जब परिश्रम के द्वारा नक्शे के अनुसार निर्माण कार्य करेंगे तभी उसमें शयन-भोजनादिक क्रियाएँ सम्भवित हैं। अगर कोई नक्शे से ही मकान का काम लेना चाहे तो क्या यह सम्भव है? कदापि नहीं।

हाँ, नक्शे के आधार पर मकान तय्यार होते हैं। भवन निर्माण में नक्शे का अत्यधिक महत्त्व है। इसलिए राज, कारीगर आदि की अपेक्षा इंजिनियर का महत्त्व भी अधिक है। परन्तु केवल नक्शा ही पर्याप्त नहीं है। नक्शा बनवाकर कोई घर में रख ले तो क्या उससे उसका मकान तय्यार हो जायगा और क्या वह उससे मकान का काम ले सकेगा? कदापि नहीं। भवन-निर्माण में नक्शे का भी महत्त्व है और उसके आधार पर तदनुकूल सामग्री और श्रम की भी महत्ता है। इसी तरह मात्र ज्ञान और दर्शन से

ही काम चलने वाला नहीं है, आचरण-चारित्र की भी आवश्यकता है। जो ज्ञान व्यवहार मे नहीं उतरता है वह कार्य-साधक नहीं होता है। जो ज्ञान जीवन व्यवहार मे उतारा जाता है, ज्ञानानुकूल प्रवृत्ति या आचरण किया जाता है वही साधक होता है। नक्शे को कार्यरूप देने के लिए ईंट, चूना, मिट्टी कारीगर आदि बाह्य सामग्री और श्रम की जरूरत है। इसके बिना नहीं चलाया जा सकता है। इसी तरह चारित्र—आचरण के बिना भी साध्य सिद्ध नहीं हो सकता है।

हाँ, यह बात अवश्य है कि संसार मे ईंट, चूना, मिट्टी, मजदूर आदि प्रचुर मात्रा मे मिल जाते है परन्तु नक्शा बनाने वाले इंजिनियर कम ही मिलते हैं। इसी तरह बाह्य क्रियाएँ करने वालो की विश्व मे प्रचुरता है परन्तु मोक्षमार्ग बतलाने वाले पुरुष विरल ही है।

हमारे परम आराध्य अरिहंत देव ने भगवती सूत्र मे लोक का नक्शा खीचकर हमारे सामने रख दिया है। ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक अधोलोक का चित्रण, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा का प्रारम्भ कहाँ से होता है, विदिशाएँ कहाँ से शुरू होती है, नक्षत्र क्या है, पर्वत, नदी, द्वीप-समुद्र आदि समस्त बातो का साफ साफ नक्शा उन्होंने तय्यार कर हमारे सामने रख दिया है। चौदह राजू प्रमाण लोक का नक्शा उन्होने चित्रित किया है। नक्शा बनाने वाले को कुछ देना पड़ता ही है। जिन महापुरूषो ने इस चराचर लोक का नक्शा खीच कर हमारे सामने रख दिया है उनके प्रति हमारी कितनी गहरी श्रद्धा होनी चाहिए।

हाँ, बात यह चल रही थी कि साधन दोनो तरह के होते हैं। जड़ साधन भी होते हैं और चेतन साधन भी। भवन बनाने मे भी दोनो तरह के साधनो की आवश्यकता है। ईंट चूना सीमेन्ट आदि जड़ साधन हैं और मजदूर आदि चेतन साधन हैं। बनाना चेतन का ही काम है। जड़ तो साधन ही है परन्तु चेतन साधन भी होता है और साधक भी होता है। इस तरह चेतन के पक्ष में दो मत है और जड़ के पक्ष मे एक ही मत है। यदि जड और चेतन के बराबर मत (vote) हो तो चेतन के हक में फैसला नहीं होता है। परन्तु अन्ततः जड़ पर चेतन की विजय होती है अतः चेतन का महत्त्व अधिक है। यदि ऐसा नही हो तो फिर कोई भी जीव मुक्ति नही प्राप्त कर सकता। मुक्ति प्राप्त करना अर्थात् जड़ कर्मों पर चेतन का विजय प्राप्त करना है।

हाँ, बात यह चल रही थी कि सरोवर को खाली करने के लिए उसके साधनो और उपायो का ज्ञान और उन पर दृढ़ विश्वास हो जाने पर पानी निकालने का कार्य किया जाता है। कुछ पानी निकालने के लिए इंजिन लगा दिया जाता है, कुछ सूर्य की गर्मी से सूखता है। नवीन पानी आने के मार्ग बंद कर दिये जाते है तब सरोवर खाली हो जाता है। इसी तरह आत्मा रूपी सरोवर मे कर्म रूपी जल भरा हुआ है। इसे सूखाने के लिए पहले उपायो का ज्ञान करना चाहिए, उन पर दृढ़ विश्वास होना चाहिए और उन उपायो के अवलम्बन के द्वारा नवीन कर्म आने के द्वारो को बंद कर देना चाहिए। जो पहले के कर्म विद्यमान है

उन्हे तपश्चर्या द्वारा क्षीण कर देने चाहिए। इस प्रकार यह आत्मा किसी दिन कर्म कलंक से मुक्त हो जाएगा।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूप साधनों से मोक्ष रूप साध्य की सिद्धि होती है। जब साध्य की सिद्धि हो जाती है तब कुछ साधन तो दूर हो जाते है और कुछ साधन बने रहते है। जो साधन अन्तरंग साधन होते है वे साध्य प्राप्ति के पीछे भी बने रहते है परन्तु जो बाह्य साधन होते है वे साध्य प्राप्ति के बाद निवृत्त हो जाते है। ज्ञान और दर्शन अन्तरंग साधन है और चारित्र एवं तप बाह्य साधन है। मोक्ष प्राप्ति के बाद भी ज्ञान-दर्शन रहता है परन्तु चारित्र और तप मोक्ष-प्राप्ति तक ही रहते है। तात्पर्य यह हुआ कि ज्ञान दर्शन अन्तरंग साधन है और चारित्र एवं तप बाह्य साधन। इसका अर्थ यह भी हुआ कि ज्ञान और दर्शन आत्मा का मूल स्वरूप है। ज्ञान और दर्शन केवल साधन ही नहीं है बल्कि वे साधक भी हे और साध्य भी है। पहले यह कहा गया है कि साधक तो आत्मा है फिर ज्ञान-दर्शन साधक कैसे हो सकते हैं? यह प्रश्न किया जा सकता है परन्तु इसका उत्तर यह है कि साधक आत्मा ज्ञानदर्शनमय ही है। आत्मा का स्वरूप ही ज्ञान--दर्शनमय है। इनसे रहित कोई भी जीव नही है। ज्ञान--दर्शन के बिना आत्मा रह ही नहीं सकती। जिसमें ज्ञान-दर्शन नहीं है वह आत्मा नहीं, जड़ है। शास्त्रकार ने फरमाया है.—

जे आया से विण्णाया, जे विण्णाया से आया

(आचारांगसूत्र)

जो आत्मा है वह ज्ञाता है और जो ज्ञाता है वह आत्मा है। ज्ञान अर्थात् आत्मा और आत्मा अर्थात् ज्ञान।

भगवती सूत्र मे प्रश्न किया गया है किः—

आया भंते! णाणे अण्णे णाणे?

हे भगवन्! आत्मा ज्ञान है या ज्ञान आत्मा से अन्य है?

इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है कि ज्ञान है सो आत्मा है। और भी कहा है कि "णाणे नियमं आया"

जहाँ ज्ञान है वहाँ नियमतः आत्मा है और जहाँ आत्मा है वहाँ नियमतः ज्ञान है।

यद्यपि शास्त्र मे अन्यत्र ज्ञान--अज्ञान का भेद किया गया है और मिथ्यादृष्टियो में ज्ञान का अभाव बताया है परन्तु वह कथन व्यवहार नय की अपेक्षा से है। संग्रह नय की अपेक्षा से तीन अज्ञान, पाँच ज्ञान यह सब ज्ञान के अन्तर्गत ही आते हैं। व्यवहार नय इनमे भेद करता है। वह खीर खाटे को अलग २ बतलाता है। वह कहता है कि ज्ञान क्षायिक भाव है और अज्ञान औदयिक भाव है अतः दोनो का क्षेत्र अलग २ है। यह अपेक्षा का भेद हुआ।

"जे आया से विण्णाया, जे विण्णाया से आया"

यह कथन संग्रह नय की अपेक्षा से जानना चाहिए। तात्पर्य यह हुआ कि ज्ञान और आत्मा मे तादात्म्य सम्बन्ध हैं। वे एक दूसरे से पृथक् नही रहते हैं। ज्ञान गुण है और आत्मा गुणी है। गुण के बिना गुणी नहीं रहता और गुणी के बिना गुण नही रहते। गुण गुणी के साथ ही रहते है। जहाँ मिश्री है वहाँ मिठास है और जहाँ मिठास है वहाँ मिश्री है। ऐसा कभी नही हुआ कि जहाँ मिश्री है वहाँ मिठास न हो और जहाँ मिठास है वहाँ मिश्री न हो।

सामान्य जीवो को ऐसी शंका हो सकती है कि कभी २ गुण तो प्रतीत होता है परन्तु गुणी नहीं प्रतीत होता। जैसे मिश्री पानी में घुल जाने पर उसमे उसका गुण मिठास तो रहता है परन्तु मिश्री नही दिखाई देती। इसलिए जहाँ गुण होते है वहाँ गुणी रहता ही है, यह बात कैसे संगत है? इस शंका का समाधान यह है कि—यद्यपि उस मीठे पानी मे मिश्री अपने स्वरूप में नही दिखाई देती तदपि वह वहाँ रूपान्तर मे विद्यमान है ही। इसमे शंका की बात नही है। जब वह मीठा पानी अग्नि पर चढ़ेगा अग्नि द्वारा पानी जल जाएगा तब उसमे से मिश्री स्वयं निकल आएगी। यदि उसमे मिश्री न होती तो वह भला उसमे से कैसे प्रकट हो सकती थी? जो चीज जहाँ नही होती वह उसमे से बाहर कैसे आ सकती है? जिसका जहाँ अभाव है वहाँ उसका सद्भाव या आविर्भाव कैसे हो सकता है? अभाव मे सद्भाव नहीं होता है। कहा है,—

तरह ज्ञान और आत्मा के बीच एक तीसरी चीज मिल गई है जिसने आत्मा का स्वरूप विकृत बना दिया है। वह तीसरी चीज है—पुद्गल।

इस पुद्गल ने बीच में पड़ कर सारा खेल ही बिगाड़ दिया। यदि ज्ञान और आत्मा के बीच यह पुद्गल नहीं आता तो यह जीवात्मा कुछ और ही रूप मे होता। वह परमात्मा बन जाता। परन्तु पुद्गल की करतूतों के कारण वह इधर-उधर संसार-कन्तार में भटक रहा है।

पुद्गल, दे दे धोखा तू ने, मुझको खूब रूलाया रे।
खूब रुलाया खूब रुलाया, खूब रुलाया रे॥ पुद्गल०॥
नरकगति तिर्यंचगति में, बहु दुःख पाया रे।
पुण्य हुआ तब मनुज-जन्म, यह हाथ में आयारे॥ पु०॥
तेरे संग से भूपति बनियो, सिर ताज धरायो रे।
तेरे कारण से विष्ठा में, कृमि कहायो रे॥ पुद्गल०॥

जीव और शिव (परमात्मा) मे भेद कराने वाला यह पुद्गल ही है। इस पुद्गल ने जीवात्मा की बड़ी दुर्दशा कर रखी है। इसने जीवात्मा को वह मदिरा पिला रखी है जिसके कारण वह अपना स्वरूप ही भूल रहा है और पर रूप में रमण कर रहा है। उस पुद्गल ने जीवात्मा पर ऐसा जहर चढ़ा दिया है कि उसे कडुवी चीजें तो कडुवी नहीं लगती और मधुर-हितकर चीजें

कडुवी लगती है। जिस पर सांप का विष चढ़ गया है उसे नीम की कडुवी पत्तियाँ कडुवी नहीं लगती। इसी तरह जिस पर पुद्गल का-मिथ्यात्व का जहर चढ़ गया है उसे संसार के भोगोपभोग--ऐश आराम कटुक नही लगते। वह उन्हे आनन्द से भोगता है। उसे पथ्य और हितकारी बाते अरुचिकर प्रतीत होती है। यह पुद्गल के जहर का असर है।

जिस जीवात्मा को अपने यथार्थ स्वरूप का और पुद्गल की करतूतो का भान हो गया है वह बोलता है कि—अरे दुष्ट पुद्गल! तेरे झांसे मे आकर, तेरे लुभावने और सुहावने माया जाल मे पड़कर मैंने बहुत दुःख उठाया है। तू ने मेरी बड़ी दुर्दशा कर दी है। तू ने मुझे इस संसार चक्र मे बडी निर्दयता के साथ घुमाया। मुझे ऊँचा चढ़ाकर जोर से नीचे पटका। कभी तू ने मुझे असह्य यातनाएँ सहन करने के लिए नरक मे ढकेल दिया, कभी तिर्यंचगति में ला पटका। कभी तूने मुझे सब्ज बाग दिखाया—राजा बना दिया। परन्तु यह भी मुझ पर दया करने के लिए नही परन्तु मुझे अधिक काल तक यातनाएँ सहन करने योग्य बनाने के लिए। तू ने मुझे ऊँचा चढ़ाया परन्तु वह अधिक जोर से नीचा गिराने के लिए। तू ने मुझे देव गति मे भी भेजा परन्तु वह ऊँचा चढ़ाकर एकदम नीचे गिराने के लिए। तू ने मुझे इतनी जोर से नीचा पटका कि मै अनन्तकाल तक उस नीची दशा—निगोद से उठ ही नही सका। अनन्त चौवीसी मोक्ष मे चली जाती है परन्तु निगोद से छुटकारा नहीं मिलता है। पुद्गल की ही यह सारी माया है जो जीव संसार मे रुल रहा है,

चौरासी मे चक्कर काट रहा है और नानाविध यातनाएँ सहन कर रहा है। इस पुद्गल के फंदे से निकले बिना मुक्ति नही हो सकती।

पुद्गल हर हालत में हानिकर ही है। जहर की चाहे जैसी शकल बना लो वह मारक ही होता है। इस पुद्गल के फंदे मे छूटना है और अपने स्वरूप को पाना है तो आँच सहन करनी पडेगी। पानी मे मिली हुई मिश्री को अपना वास्तविक रूप प्रकट करना है तो उसे अग्नि पर चढ़ कर अग्नि-परीक्षा देनी ही होगी। सोने को यदि अपना निखालस शुद्ध-रूप पाना है तो आग मे तपना ही पडेगा। इसी तरह यदि जीवात्मा को पुद्गल के फन्दे से मुक्त होना है तो उसे तपस्या की भट्टी पर चढ़ना ही पड़ेगा। तपस्या की आग में पड़ कर कर्म पुद्गल जल जाएँगे और जीव शुद्ध बन जाएगा।

जिन आत्माओ ने पुद्गल की करतूतो को जान लिया है वे फिर ससार के—विषय-वासना के फन्दे मे नही फँसते है। वे उसका दृढता से परित्याग कर देते है। वे अपने आपको तप की आग मे हँसते हँसते झोंक देते हैं और एक दम शुद्ध होकर बाहर आते है। वे गजसुकुमाल की तरह अविलम्ब अपना साध्य सिद्ध कर लेते है। वे मोक्ष के बनड़े सिर पर मिट्टी की पाल बाँध कर उसमे खेर के अंगार डाल दिये जाने पर भी खीचडी की तरह खोपडी खद्-बद् खद् बद् करने पर भी अलौकिक आनन्द का अनुभव करते हैं। दुनिया की दृष्टि मे प्रतीत होता है कि वे महान्

कष्ट उठा रहे है परन्तु उनकी आत्मा तो उसमे आनन्द की अनुभूति करती है। इसीलिए कहा है:—

> प्रेम पंथ पावक नी ज्वाला भाली पाछा भागे जोने
> मांहि पड्या ते महा सुख माने देखनारा दाझे जो ने

जहाँ पुद्गल के फंदे मे फँसा हुआ प्राणी जिसे आग समझता है और दूर खड़ा रहकर भी डर के मारे जलता है वहाँ पुद्गल के फंदे से मुक्त प्राणी उस आग मे कूद पड़ता है और आनन्द का अनुभव करता है। प्रेम का पंथ-प्रभु का पंथ, अध्यात्ममार्ग या मोक्ष मार्ग ऐसा है कि जो व्यक्ति इसे दूर खड़ा-खड़ा देखता है वह घबरा कर इससे भाग छूटता है परन्तु जो इसके अन्दर प्रवेश करता है, गोते लगाता है वह अलौकिक रत्नों को प्राप्त करता है और निहाल हो जाता है, कृतकृत्य हो जाता है।

तात्पर्य यह हुआ कि ज्ञान और आत्मा के बीच से यह पुद्गल नामक चीज निकल जाती है तब आत्मा अपने विकृत रूप से वास्तविक रूप मे आ जाती है।

आत्मा को वास्तविक स्वरूप मे लाने वाले साधन चार है ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। ज्ञानदर्शन अन्तरंग साधन है और चारित्र एवं तप बाह्य साधन हैं। ज्ञान और दर्शन फल के समान है और चारित्र एवं तप फूल के समान है। फूल का काम फल को जन्म देना है। फल लग जाने पर फूल स्वयंमेव मिट

जाते हैं। इसी तरह मोक्ष प्राप्ति तक चारित्र एवं तप रहते है इसके बाद वे निवृत्त हो जाते हैं। ज्ञान और दर्शन अन्तरंग साधन होने से सदा बने रहते हैं। दूसरे शब्दो में अन्तरंग साधन स्वयं साध्य बन जाते है।

ऊपर बताया हुआ यह मोक्ष मार्ग नवीन नहीं है। यह अनुभूत मार्ग है। इस मार्ग पर चल कर अनन्त जीवो ने मोक्ष प्राप्त किया है, आज भी विदेहादि क्षेत्र मे जीव मोक्ष प्राप्त कर रहे हैं और अनन्त जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे। यह मार्ग आचीर्ण है, परीक्षित है अनुभूत है। इस पर चलने वाला अवश्यमेव मंजिल पर, लक्ष्य पर पहुँचता ही है। इसमे कोई सन्देह नहीं हैं, यह हितकारी मार्ग हमें किसने बताया ? उन परम कृपालु देवाधिदेव अरिहन्त प्रभु ने। वे स्वयं इस मार्ग पर चले हैं। उन्होंने अपने अनुभव के पश्चात् जन-कल्याण और विश्व-कल्याण के लिए उसका प्रतिपादन और दिग्दर्शन कराया है। उन महोपकारी अर्हन्त प्रभु के हम जितने गुण गाएँ उतने थोड़े ही हैं। उपकारी के उपकारों का वर्णन करना कृतज्ञता है और उसके उपकारो को न मानना कृतघ्नता है। हमें कृतज्ञ बनना चाहिए। कृतघ्न नहीं।

अर्हन्त प्रभु के गुण अनन्त हैं। करोड जिह्वाओं से भी उनका गुणानुवाद नहीं हो सकता। तदपि यह रसना गुणानुवाद किये बिना नही रह सकती है। रहे भी कैसे ? कवि कहता हैः—

जिम केतकी के दल के महके अलि के चित केम टिके वहि के
मधु के रितु के वन के सर के पिक केम चुके बिन के लव के
घन के घटके स्वर के सुन के किम केकि चुके नृत के लटके
खग के रम के किम केतु टिके कवि केम चुके स्तव के कथ के

केतकी की सुवास मंद मंद वायु की लहरियो द्वारा चारों ओर महक रही हो तब क्या भँवरा भला चुप चाप रह सकता है ? नहीं, वह गुञ्जार किये बिना नहीं रह सकता।

जब आम्रवृक्ष के मौर आगये हों तब क्या कोयल "कुहूँ२" की मधुर ध्वनि निकाले बिना मौन रह सकती है ? कदापि नहीं। वर्षा ऋतु मे जब काले काले सजल बादलों की घटाएं गम्भीर स्वर से गरज रही हों तब उसे सुनकर मयूर बोले और नाचे बिना कभी नहीं रह सकता। जब हवा चल रही हो तब ध्वजा फहरे बिना चुप चाप कैसे रह सकती है ? नहीं रह सकती है। इसी प्रकार प्रभु की गुणावलियाँ सामने हो और प्रभु-भक्त चुप चाप बैठा रहे यह कभी नहीं हो सकता है। इसलिए हमें उनके गुण-गान करने ही चाहिए। किस प्रकार ? इस प्रकारः—

अरिहंत अरिहंत अरिहंत अरिहंत।
अरिहंत अरिहंत अरिहंत भगवंत॥

ऐसी महान् विभूतियो के गुण गाने से, उन्हें हृदय में ध्याने से जीवन उच्च बनता है और निखरता है। जो इस प्रकार गुण-गाते हैं वे अपने जीवन को ऊँचा उठाते है और इसलोक परलोक में सुख पाते है।

२७-६-५२ }
आश्विन शु० ८ }
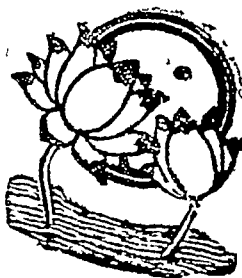
भजन की भूमिका
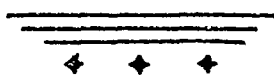
धर्माभिलाषी सत्पुरुषो ! व सन्नारियो !
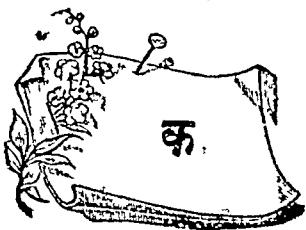
ई दिनो से आपके सामने मंगलाचरण के रूप मे प्रति-दिन अरिहन्त प्रभु की प्रार्थना की जा रही है। प्रश्न हो सकता है कि प्रतिदिन प्रार्थना क्यों की जाती है ? नित्य-प्रति अरिहन्त प्रभु की गुणावलियो की आवृत्तियाँ क्यों करनी चाहिए ? प्रभु के गुण बार-बार दोहराने और सुनने-सुनाने से क्या लाभ होता है ? इस प्रश्न का मैं क्या उत्तर दूं ! प्रत्येक मनुष्य की रुचि और अभिलाषा भिन्न है तदपि इस

प्रश्न का सीधा-सादा उत्तर यही है कि कल भी भोजन किया था, आज भी भोजन करना पड़ता है और आगामी कल भी भोजन करना पड़ेगा; नित्य प्रति भोजन किया जाता है परन्तु भोजन की तमन्ना बनी रहती है। आप कभी २ उपवासादि व्रत के दिन भोजन बंद रखते है तथापि क्षुधा की तड़फन तो काम करती ही है। यह बात अलग है कि आप उस पर नियंत्रण कर लेते है। जैसे भौतिक देह के लिए नित्य प्रति भोजन की आवश्यकता रहती है अतएव नित्यप्रति भोजन करने पर भी यह प्रश्न नहीं उठता है कि हमे प्रतिदिन क्यो खाना चाहिए? शरीर को पुष्ट बनाने के लिए, उसका निर्वाह करने के लिए उसे भोजन देना आवश्यक है। इसी तरह आत्मा को पुष्ट बनाने के लिए उसे प्रार्थना रूपी खुराक देना ही चाहिए। आत्मा को बलिष्ट और पुष्ट करने के लिए प्रार्थना अति उपयोगी सारभूत तत्त्व है। जैसे देह को प्रतिदिन भोजन की आवश्यकता रहती है उसी तरह आत्मा को भी प्रतिदिन खुराक की आवश्यकता है। आत्मा की वह खुराक प्रार्थना ही है।

जैसे स्वस्थ व्यक्ति को प्रतिदिन सहज रूप से क्षुधा का अनुभव होता है। यदि सच्ची भूख नहीं लगती है तो समझना चाहिये कि शरीर में कहीं खराबी हो गई है। सच्ची भूख लगना आरोग्य का चिह्न है और भूख न लगना बीमारी है। स्वस्थ व्यक्ति को प्रतिदिन भूख लगती ही है। इसी तरह जिस व्यक्ति की आत्मा नीरोग और स्वस्थ है उसे सहज रूप से प्रभु-प्रार्थना की भूख लगती ही है। यदि प्रभु-प्रार्थना रूपी भूख न लगे तो

समझना चाहिए कि आत्मा मे कहीं विकृति-(रोग) आ गई है, दूषण पैदा हो गये है। स्वस्थ आत्मा को तो प्रति दिन प्रार्थना रूपी भूख लगती ही है। इसलिए उसे शान्त करने के लिए वह प्रतिदिन प्रार्थना करता है। तात्पर्य यह हुआ कि आत्मा के लिए प्रार्थना की उतनी ही आवश्यकता है जितनी देह के लिए भोजन की जरूरत है। शरीर को बल देने के लिए भोजन जरूरी है वैसे ही आत्मा को बलिष्ठ और उत्तरोत्तर विकसित करने के लिए प्रभु की गुणावलियो का गान करना भी आवश्यक है।

शारीरिक बल तो इस जीव ने अनेक बार अनेक जन्मो मे प्राप्त किया है। वह बलवान् से बलवान् भी बना है परन्तु उससे गरज सरी नही। केवल शारीरिक बल से न तो भूतकाल मे प्रयोजन हल हुआ है, न वर्त्तमान मे होता है और न भविष्य में प्रयोजन हल होगा। आत्मा की उपेक्षा करके जो शारीरिक या भौतिक बल प्राप्त किया जाता है वह पतन का कारण होता है। जिस बल मे आत्मा की उपेक्षा है वह बल सृष्टि के लिए भयावह होता है। वह बल विश्व के लिए उपकारक न होकर अपकारक होता है। जिस बल मे आत्मा की उपेक्षा नही है वह बल उन्नति के मार्ग पर अवश्य ले जा सकता है। आत्मा की अवहेलना कर बढ़ाया हुआ शारीरिक बल उन्माद और पतन का कारण होता है और वह विश्व की शान्ति के लिए घातक होता है। शारीरिक बल से आत्मिक बल का दर्जा बहुत ऊँचा है। प्रार्थना करने से आत्मिक बल मिलता है, आत्मा पुष्ट बनती है और उसका उत्त-रोत्तर विकास होता है। इतना ही नहीं प्रभु की प्रार्थना और आरा-

धना करने वाला स्वयं आराध्य बन जाता है। वह भक्त से भगवान् बन जाता है, नर से नारायण बन जाता है, जीव से शिव बन जाता है और आत्मा से परमात्मा बन जाता है। यह है प्रतिदिन प्रार्थना व भजन करने का प्रयोजन और माहात्म्य।

बन्धुओ! अभी भोजन और भजन का उल्लेख किया गया था। इन दोनो का सम्बन्ध रसना (जीभ) से है। भोजन का सम्बन्ध भी जिह्वा से है और भजन का सम्बन्ध भी जिह्वा से है। भोजन का सीधा और स्वाभाविक मार्ग मुख ही है। यद्यपि इंजेक्शन आदि के द्वारा भी शरीर को भोजन दिया जाता है परन्तु वह अपवाद की स्थिति मे ही। विशिष्ट रोगादि की स्थिति में ही वैसा किया जाता है। सहजरूप से तो मुख ही भोजन का मार्ग है। मुख में रही हुई रसनेन्द्रिय से भोजन और भजन का सम्बन्ध है। लेकिन केवल रसना से ही भोजन और भजन का आनन्द नही आ सकता है। उसके लिए किसी और चीज के संयोग की आवश्यकता है। वह चीज है मन। भोजन का आनन्द भी तब तक नहीं आ सकता है जबतक रसना के साथ मन का संयोग न हो और भजन का आनन्द भी तब तक नही आता जब तक जबान के साथ मन का संयोग न हो।

भोज्य पदार्थ दो तरह के हैं। घन और तरल। रोटी, चावल आदि घन हैं और शरबत आदि तरल हैं—पेय हैं। इन दोनों प्रकार के खाद्य और पेय पदार्थों के स्वाद का आस्वादन करना रसना (जीभ) का कार्य है। यह कार्य स्पर्श, नाक, कान,

आँख से नहीं हो सकता। परन्तु केवल रसना से ही भोजन के आनन्द की अनुभूति नहीं होती। उसके लिए मन का उसके साथ जुड़ना जरूरी है।

जिह्वा उत्तरोत्तम स्वादिष्ट चीजों को छू रही है परन्तु यदि आपकी विचार-धारा कहीं अन्यत्र काम कर रही है तो उन चीजों का आनन्दानुभव आपको नहीं हो सकता। मन के अनुभव बिना भोजन तो पेट के गड्ढे की पूर्ति मात्र करेगा। आनन्द की अनुभूति उससे नहीं होगी। आनन्द की अनुभूति के लिए तो रसना के साथ मन का भी लगना जरूरी है। यह सब के अनुभव की बात है।

भद्र पुरुषो और महिलाओ! भजन के लिए भी यही बात है। जिह्वा भजन का उच्चारण करती है परन्तु यदि मन कहीं अन्यत्र प्रवृत्त है तो भजन का आनन्द नहीं आ सकता। भजन का वास्तविक आनन्द तभी आ सकता है जब जीभ से उच्चारण करने के साथ ही साथ मन भी उसके साथ ही जुड़ा हुआ हो। मन के संयोग के बिना केवल रसना के योग से न भोजन का आनन्द आता है और न भजन का। अतएव यदि आनन्द की अनुभूति करना है तो जबान के साथ २ मन को भी जोड़ना होगा। वचन के साथ जब मन का योग होता है तब भजन का आनन्द आता है। मनोयोग पूर्वक किया हुआ भजन भव-भव की भूख को मिटाकर शाश्वत शांति प्रदान करता है।

भोजन तो थोड़े समय के लिए ही शारीरिक तृप्ति प्रदान करता है। कहावत है कि "उतरो घाटी हुओ माटी।" भोजन

धना करने वाला स्वयं आराध्य बन जाता है। वह भक्त से भगवान् बन जाता है, नर से नारायण बन जाता है, जीव से शिव बन जाता है और आत्मा से परमात्मा बन जाता है। यह है प्रतिदिन प्रार्थना व भजन करने का प्रयोजन और माहात्म्य।

बन्धुओ ! अभी भोजन और भजन का उल्लेख किया गया था। इन दोनो का सम्बन्ध रसना (जीभ) से है। भोजन का सम्बन्ध भी जिह्वा से है और भजन का सम्बन्ध भी जिह्वा से है। भोजन का सीधा और स्वाभाविक मार्ग मुख ही है। यद्यपि इंजेक्शन आदि के द्वारा भी शरीर को भोजन दिया जाता है परन्तु वह अपवाद की स्थिति मे ही। विशिष्ट रोगादि की स्थिति में ही वैसा किया जाता है। सहजरूप से तो मुख ही भोजन का मार्ग है। मुख में रही हुई रसनेन्द्रिय से भोजन और भजन का सम्बन्ध है। लेकिन केवल रसना से ही भोजन और भजन का आनन्द नहीं आ सकता है। उसके लिए किसी और चीज के संयोग की आवश्यकता है। वह चीज है मन। भोजन का आनन्द भी तब तक नही आ सकता है जबतक रसना के साथ मन का संयोग न हो और भजन का आनन्द भी तब तक नही आता जब तक जबान के साथ मन का संयोग न हो।

भोज्य पदार्थ दो तरह के हैं। घन और तरल। रोटी, चांवल आदि घन हैं और शरबत आदि तरल है—पेय हैं। इन दोनों प्रकार के खाद्य और पेय पदार्थों के स्वाद का आस्वादन करना रसना (जीभ) का कार्य है। यह कार्य स्पर्श, नाक, कान,

आँख से नहीं हो सकता। परन्तु केवल रसना से ही भोजन के आनन्द की अनुभूति नहीं होती। उसके लिए मन का उसके साथ जुड़ना जरूरी है।

जिह्वा उत्तमोत्तम स्वादिष्ट चीजो को छू रही है परन्तु यदि आपकी विचार-धारा कहीं अन्यत्र काम कर रही है तो उन चीजो का आनन्दानुभव आपको नहीं हो सकता। मन के अनुभव बिना भोजन तो पेट के गड्ढे की पूर्ति मात्र करेगा। आनन्द की अनुभूति उससे नही होगी। आनन्द की अनुभूति के लिए तो रसना के साथ मन का भी लगना जरूरी है। यह सब के अनुभव की बात है।

भद्र पुरुषो और महिलाओ ! भजन के लिए भी यही बात है। जिह्वा भजन का उच्चारण करती है परन्तु यदि मन कहीं अन्यत्र प्रवृत्त है तो भजन का आनन्द नहीं आ सकता। भजन का वास्तविक आनन्द तभी आ सकता है जब जीभ से उच्चारण करने के साथ ही साथ मन भी उसके साथ ही जुड़ा हुआ हो। मन के संयोग के बिना केवल रसना के योग से न भोजन का आनन्द आता है और न भजन का। अतएव यदि आनन्द की अनुभूति करना है तो जबान के साथ २ मन को भी जोड़ना होगा। वचन के साथ जब मन का योग होता है तब भजन का आनन्द आता है। मनोयोग पूर्वक किया हुआ भजन भव-भव की भूख को मिटाकर शाश्वत शांति प्रदान करता है।

भोजन तो थोड़े समय के लिए ही शारीरिक तृप्ति प्रदान करता है। कहावत है कि "उतरो घाटी हुओ माटी।" भोजन

से क्षणिक तृप्ति होती है परन्तु भजन से होने वाली तृप्ति शाश्वत होती है। सच्चे मनोयोग पूर्वक किया हुआ भजन एक भव मे ही नही भव-भव मे शान्ति प्रदान करने वाला और अन्तत: मोक्ष प्रदान करने वाला होता है। भोजन से भजन की महिमा अनन्त गुण अधिक है।

हाँ, तो यह कहा गया है कि भोजन और भजन का आनंद रसना के साथ मन का संयोग होने से आता है। रसानन्द का अनुभव मन से सम्बन्ध रखता है। मनुष्यो को ध्यान रखना चाहिए कि वे केवल रसानन्द के प्रवाह मे ही न बह जाँय। रसानन्द के साथ ही साथ शरीर और आत्मा के आरोग्य का भी ध्यान रखना चाहिए। किंपाक आदि फल जिह्वा को मधुर लगते हैं परन्तु जहरीले होने से वे शरीर के आरोग्य के लिए भयावह होते हैं। जिह्वा को सुखद प्रतीत होने पर भी वे परिणामत: देह के लिए घातक—नाशक होते हैं। मधु लिपटी तलवार जबान पर रखने से क्षण भर के लिए सुख रूप है परन्तु जिह्वा के कट जाने से उसी जिह्वा और शरीर के लिए दु:ख रूप है। भजन के संबंध में भी यही बात है। गुणीजनो के, त्यागियो के, वैरागियों के, वीतरागियों के गुणानुवाद रूप भजन आध्यामिक उन्नति के कारण होने से सुख रूप होते हैं परन्तु कामी, क्रोधी, लालची, मिथ्यात्वी की मिथ्या प्रशंसा रूप गायन गाये जाएँ तो वह अनिष्ट रूप होते हैं। मिथ्यात्वी के गुण गाना मिथ्यात्व को पोषण देना है।

हाँ, तो भोजन का आनन्द भी मन का संयोग हुए बिना नहीं आता तो मनःसंयोग के बिना भजन का आनन्द कैसे आ सकेगा ? मुख से "णमो अरिहंताणं" "णमो अरिहंताण" बोल रहे हैं और मन कहीं और भटक रहा है तो भजन के आनन्द की अनुभूति कैसे हो सकेगी ? भोजन अच्छा और रुचिकर होने पर भी यदि चिन्ताग्रस्त स्थिति मे किया जाता है तो वह विषाक्त बन जाता है। इसमें भोजन का कोई दोष नहीं है। वह तो अच्छा है परन्तु चिन्तित मन ने उसका आनन्दानुभव नहीं करने दिया। प्रफुल्लित और आनन्दित अवस्था में किया जाने वाला सादा और सात्विक भोजन भी पौष्टिक और सुखद होता है। इसी तरह सब प्रकार की चिन्ताओ, झंझटों और प्रपंचो को छोड़ कर एकाग्र चित्त से भजन किया जाता है तो ही आनन्द आ सकता है। भगवान् के भजन के समय, ध्यान के समय, प्रभु-स्मरण के समय मुख से उच्चारण तो हो रहा है परन्तु मन वहाँ उपस्थित न हो तो वह द्रव्य स्मरण है। उसे भाव भजन या भाव स्मरण नहीं कहा जा सकता है। जो आनन्द भाव मे है वह द्रव्य में नहीं है। क्योंकि आनन्द का सम्बन्ध मन से होता है। स्मरण का सम्बन्ध जबान से नहीं किन्तु मन से है। जिस स्मरण मे मन का योग नहीं है वह स्मरण नहीं किन्तु रटन है। स्मरण में प्रभु के गुणो का चिंतन करते हुए उनकी गुणावलियों को दोहराना होता है। यह काम मन के संयोग के बिना हो ही नहीं सकता। मुख से तो "णमो अरिहंताणं णमो अरिहंताणं" रट रहे हैं और स्मरण कर रहे हैं धन का और स्वजनादिक का। स्मरण और का और रटन और

का ! इंजिन अन्यत्र और डिब्बे अन्यत्र ! इस तरह काम कैसे चलेगा ? इंजिन और डिब्बे जुड़ेंगे तभी गाड़ी मंजिल पर पहुँचेगी। अन्यथा वहीं पड़ी रहेगी। वचन और मन का संयोग होगा तो ही वास्तविक स्मरण, होगा। इस तरह का वास्तविक स्मरण थोड़े समय के लिए ही भले किया जाय, वह जीवन को ऊँचा उठाने वाला है। वास्तविक स्मरण वह है जिसमें मन का योग है और वचन से रटन हो रहा है।

भद्र पुरुषो ! आपने अरहट्ट घटीयंत्र देखा होगा। सैकड़ो घड़े माला के आकार मे मोटी रस्सी से जुडे रहते है। वह घटमाल ही कहाती है। वह घटमाल कुंए के पानी में अन्दर डूबी हुई होती है जिससे मटको मे पानी भरता रहता है। वह घटमाल वैल के चक्राकार घूमने से फिरती रहती है जिससे घड़ो में पानी भरता जाता है और खाली होता जाता है। इस तरह उससे सिंचाई होती है और सैंकड़ों वीघे जमीन हरी-भरी वनती है। धान्य आदि उत्पन्न होते है हजारों मानवों का जीवन-निर्वाह होता है। कल्पना कीजिये कि यदि वह घटमाल पानी में न डूबकर ऊपर ही ऊपर घूमती रहे तो क्या एक बूंद पानी भी उसके द्वारा वाहर आ सकता है ? नहीं आ सकता। यदि पानी से वे मटके याल जितने दूर भी रह जाय तो भले ही लगातार सैंकड़ो वर्ष तक वह घटमाल घूमती रहे परन्तु एक वंद पानी भी उससे वाहर नहीं आ पाता और सिंचाई नहीं हो सकती। पानी के ऊपर ऊपर ही वह घटमाल सैंकड़ो वर्प तक घूमती रहे उससे एक

इंच जमीन भी सर-सब्ज—हरीभरी नही हो सकती। इसी तरह यदि वाणी प्रभु की गुणावली रूपी पानी के ऊपर ही ऊपर है तो उससे हृदय क्षेत्र की सिचाई नहीं हो सकती और उसमें आत्मिक सद्गुणो के अंकुर नही लहलहा सकते। यदि हम यह चाहते है कि हमारा हृदय-क्षेत्र आत्मिक वैभव से हरा-भरा बने तो हमे हमारी वाणी रूपी घटमाल को प्रभु की गुणावली रूप पानी के अन्दर डुबोनी चाहिए। ऐसा करने से ही हृदयक्षेत्र की सिंचाई होगी, वह स्निग्ध बनेगा। और उसमे सद्गुणो के अंकुर लहलहा उठेंगे। यदि हमारी वाणी रूपी घटमाल प्रभु की गुणावली रूप पानी के ऊपर ऊपर ही फिरती रही तो चाहे जितने वर्षों तक वह फिरती रहे उससे हृदय क्षेत्र की सिञ्चाई नहीं हो सकती और हृदय आत्मिक सद्गुणों के अंकुरो से हरा-भरा नही बन सकता। वह सूखा का सूखा ही रह जाता है। आपने माला के मनके अनेक बार फिराये, जिह्वा से प्रतिदिन भजन और गुणावली गाई परन्तु आपके हृदय की शुद्धि नही हुई, आध्यात्मिक शक्तियो के अंकुर फूट नही सके। इसका कारण यही है कि आपने प्रभु गुणावली के अन्दर डुबकी नहीं लगाई है। आप ऊपर-ऊपर ही रहे हुए हैं। आपकी जबान और माला के मनके ऊपर-ऊपर से ही फिर रहे हैं। जब तक यह ऊपर-ऊपर ही फिरना है तब तक काम नहीं सुधरना है। आवश्यकता है घटमाल की तरह प्रभु की गुणावली के अन्दर डूबकर हृदय क्षेत्र को उस जल के द्वारा स्निग्ध बनाने की। यदि इस तरह आपने अपने हृदय को स्निग्ध न बनाया और ऊपर-ऊपर से ही भजन गाते और माला फिराते रहे तो कुछ हाथ

आने वाला नहीं है। इस को समझे बिना चाहे जितना श्रम करो कोई विशेष लाभ होने वाला नही है। अतः प्रभु की गुणावली रूप पानी से हृदय-क्षेत्र को स्निग्ध बनाने की आवश्यकता है।

जो जमीन सूख गई है, गर्मी से संतप्त होने के कारण जिसकी स्निग्धता कम हो गई है वह बीजारोपण के योग्य नहीं होती। कोई चतुर किसान उस संतप्त भूमि में बीज बोने की मूर्खता नहीं कर सकता। बीजारोपण करने से पहले वह उस संतप्त भूमि को पानी के द्वारा स्निग्ध करेगा, उसकी शुष्कता का निवारण करेगा, उसमे आये हुए अन्य विकारों की सफाई करेगा। कंकर पत्थर चुनकर बाहर करेगा। भूमि के दोषो का निवारण करने के पश्चात् वह बीजारोपण करेगा और तभी उसका खेत धान्य-श्री से लहलहा उठेगा। जब तक भूमि में स्निग्धता न आयेगी तब तक ऐसा नही हो सकेगा। अतः चतुर किसान भूमि को स्निग्ध बनाने का सर्वप्रथम प्रयास करता है।

हमारा अन्तःकरण रूपी खेत राग-द्वेष-मोह, मत्सर, काम क्रोध लोभ आदि की गर्मी से संतप्त होकर शुष्क बन गया है। इन विकारो ने अन्तःकरण की स्निग्धता एवं तरावट को सोख लिया है। रागद्वेष, जातिवाद, सम्प्रदायवाद आदि भयंकर दोषों ने हृदय-क्षेत्र की स्निग्धता का विनाश कर दिया है अतः हमारी हृदय-भूमि सद्गुण रूपी बीजों का रोपण करने के योग्य नहीं रही। वह मरु-भूमि बन गई है। उसमें सद्गुण रूपी अंकुर नहीं पनप पाये हैं। यदि हम उसे पुनः उर्वरा भूमि बनाना चाहते हैं

तो सर्व प्रथम उसे स्निग्ध बनाने की आवश्यकता है। उसमे आये हुए विकारी तत्त्वों को चुन चुन कर बाहर निकाल देना है। भूमि के दोषो का निवारण कर देना है। तभी उसमे सद्गुण रूपी बीज अंकुरित होकर पनप सकते हैं। अन्यथा नही। सद्गुणो को पनपने के लिए हृदय की शुद्धि और स्निग्धता आवश्यक है। दुर्गुण तो चाहे जहाँ पनप सकते हैं। घास-फूस तो सामान्य भूमि मे भी पैदा हो जाते है परन्तु अन्न फूल आदि तो विशुद्ध भूमि मे ही पैदा होते है। क्रोध, मान, माया, लोभ, काम, मोह आदि दुर्गुण तो कहीं पर भी पनप जाते हैं परन्तु सद्गुणो को पनपने के लिए हृदय की शुद्धि और स्निग्धता आवश्यक होती है। उसके लिए प्रयत्न करना चाहिए।

बन्धुओ ! अच्छी २ वनस्पतियाँ वर्षा ऋतु मे फलती फूलती है। परन्तु जवासा ज्यों ज्यो वर्षा होती है सूखता जाता है और गर्मी में वह फला-फूला रहता है। उसे तरावट पसन्द नही है। इसी तरह काम क्रोधादि दुर्गुण वहाँ नहीं पनपते जहाँ शान्ति है-स्निग्धता है। इन्हे गर्मी पसन्द है, शान्ति नहीं।

भगवती सूत्र में प्रश्न किया गया है—हे भगवन् ! वनस्पतियाँ महाहारी कब होती है और अल्पाहारी कब होती है ? इसका उत्तर देते हुए भगवान् फरमाते हैं कि हे गौतम ! प्रावृड् (वर्षा) ऋतु मे वनस्पतियाँ सर्वोत्कृष्ट आहार करती है। वर्षा होने के कारण उन्हे पूरी २ खुराक मिलती हैं इसलिए वे हरी-भरी हो जाती है, खूब फलती-फूलती हैं। काले काले सुहावने

बादल अमोघ जल धारा की वर्षा कर इस संतप्त भूमि को शीतल और स्निग्ध बनाते हैं जिससे चारों ओर हरियाली ही हरियाली हो जाती है। बड़ा मनोहर दृश्य उपस्थित हो जाता है। उस समय प्रकृति बड़ी रमणीय प्रतीत होती है। ऐसा मालूम होता है मानो प्रकृति देवी ने स्नान शृंगार कर हरित वर्ण की वेष-भूषा धारण कर रखी हो। धीरे २ यह दृश्य ओझल होता जाता है। वर्षा बंद हो जाती है। मौसम (ऋतु) बदल जाती है। दृश्य बदल जाता है। हरी २ घास सूखती चली जाती है। जहाँ हरियाली दिखाई देती थी वहाँ अब धूल उड़ती है। वनस्पतियाँ सूख जाती है क्योंकि उन्हे पानी नहीं मिलता है। गर्मी बढ़ती जाती है। लू चलने लगती है। गर्मी के मारे पथिकों का आवागमन रुक जाता है। पशु पक्षियो की जबान सूखने लगती है। ऐसे समय मे वनस्पतियो को पूरा २ आहार नहीं मिलता है इसलिए ग्रीष्म ऋतु मे वे अल्पाहारी होती हैं।

इस पर दूसरा प्रश्न यह किया गया है कि यदि वर्षा ऋतु में वनस्पतियाँ महाहारी और ग्रीष्म ऋतु मे सर्व अल्पाहारी होती हैं तो ऐसा भी देखा जाता है कि कई वनस्पतियाँ उस समय फलती--फूलती हैं जब गरम गरम लू चलती है इसका क्या कारण है ?

भगवान् ने इसका उत्तर दिया है कि जो उष्णयोनिक वनस्पतियाँ होती हैं वे ही उस समय में फलती-फूलती हैं। उनमें उष्णयोनिक जीवों की उत्पत्ति होती है। जवासा वर्षा ऋतु में

सूखता जाता है। वर्षा उसके लिए वज्रपात के समान है। गर्मी उसके अनुकूल है। उष्ण-योनिक वनस्पतियाँ गर्मी मे फूलती फलती है और शीतयोनिक वनस्पतियाँ वर्षा मे फलती फूलती हैं।

भद्र पुरुषो! काम क्रोधादि दुर्गुण जवासे की तरह शुष्क भूमि मे पनपते है। जहाँ शान्ति की स्निग्धता नही होती, कषायों का सूखा पन होता है वही काम क्रोध आदि पनपते है। जिसके हृदय मे शीतलता, कषायो की मन्दता, उपशान्तता होती है वहाँ काम क्रोध, मोहादि दुर्गुण पनप ही नहीं सकते है। इसलिए हृदय-भूमि को स्निग्ध बनाने की, स्नेहमय बनाने की आवश्यकता है। आत्मीय ज्ञान आदि गुणो को पनपने के लिए हृदय-भूमि हरी भरी होनी चाहिए। उपयोगी वस्तुएँ तरावट में पैदा होती है। शुद्ध भूमि मे ही जीवनोपयोगी चीजे पैदा हो सकती है। भूमि के विकारो को दूर किये बिना धान्योत्पत्ति नहीं हो सकती। खेत मे पड़े हुए कंकर पत्थर और उगी हुई व्यर्थ की घास-फूस निकालना ही पड़ता है। ये व्यर्थ की चीजें भूमि का सत्त्व कम करती हैं, उसका सार खींचती है अतः उपयोगी चीजो को पूरा पूरा सत्त्व मिलने मे बाधा पहुँचती है इसलिए कृषक उसे दूर करता ही है। इसी तरह हृदय भूमि में पड़े हुए अहकार के पत्थरो को दूर करो। काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य आदि सत्त्वशोषक व्यर्थ के घास-फूस को उखाड़ फेको। निन्दा, ईर्षा, चुगली, विकथा आदि निरर्थक चीजे सद्गुणो की फसल को हानि पहुँचाती है। अतः इन्हे साफ कर देना चाहिए। अभिमान के

पत्थर और काम-विकार एवं वासनाओं की घास फूस को निकाल फेंको, हृदय भूमि में धर्म-राग, देवराग-गुरुराग रूपी स्निग्धता का संचार करो। ऐसा करने से हृदय भूमि हरी-भरी हो उठेगी। यह तभी हो सकेगा जब वह वाणी रूपी घटमाल पानी के अन्दर डूबी हुई हो। यदि वह पानी के ऊपर ही ऊपर है तो जमीन सर-सब्ज नहीं हो सकती। वह ऊपर ही ऊपर सैकड़ों वर्ष तक घूमती रहे तो भी फसल नहीं हो सकती है। माला फिराते फिराते ६०-७५ वर्ष हो गये तो भी जीवन मे जागृति क्यों नहीं आई? कारण स्पष्ट है कि माला का मनका तो फिर रहा है परन्तु मन का मनका नहीं फिर रहा है। हमारी स्निग्धता चली गई है। हमारा जीवन--क्षेत्र सूखा है। संतप्त भूमि को—शुष्क भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए पानी से सींचना आवश्यक है। इसी तरह हमारी हृदय भूमि क्रोध-काम-लोभ-लालच आदि की गर्मी से सूख गई है, संतप्त होगई है उसका उर्वरापन जाता रहा है उसे पुनः उपजाऊ बनाने के लिए प्रभु के गुणों के प्रति राग पैदा करना चाहिए। इससे हृदय मे स्निग्धता, शीतलता और शुद्धता पैदा होगी। अगर हमें किसी को ध्याना है, उसके गुण गाना है, उसके गुणों को पाना है, उसे हृदय में बिठाना है और उसकी ओर कदम बढाना है तो उसके प्रति स्नेह, प्रेम और विश्वास पैदा करना चाहिए।

स्नेहमय जीवन ही जीवन है। जिसका जीवन स्नेहमय है उसे ही जीवित रहने का अधिकार है। जिसमें स्नेह नहीं है उसे

जीवित रहने का अधिकार ही नहीं है। जिसमे स्नेह होता है वही स्वयं जीवित रहता है और दूसरे को भी जीवन-दान देता है। जिस दीपक मे स्नेह है–तेल है वही जीवित रह सकता है। स्नेह हीन दीपक जीवित नहीं रह सकता है। उसे जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है। जिस दीपक मे स्नेह होता है वही प्रकाश करता है और अंधकार में प्रकाश का संचार करता है। जिस दीपक मे स्नेह है वह घर के पदार्थों का प्रकाशक है और अन्धकार का नाशक है। जिस दीपक मे से स्नेह निकल जाता है वह स्वयं निरर्थक हो जाता है और स्थान रोकने सिवा उसका कोई महत्त्व नहीं रह जाता है। उसकी कोई उपयोगिता नहीं रह जाती है। इसी तरह जिस व्यक्ति के जीवन में दूसरो के लिए स्नेह नहीं है वह बुझे हुए दीपक की तरह निरर्थक और विश्व के लिए अनुपयोगी है। वह जीवन किस काम का जिससे दूसरो को लाभ न मिले ? वह दीपक किस काम का जिससे दूसरो को प्रकाश न मिले ? वह जीवन किस काम का जिससे उत्क्रान्ति का, अभ्युत्थान का, सर्वोदय का प्रकाश न फैले ? यह प्रकाश स्नेह पर निर्भर है। जिसमें स्नेह लबालब भरा होगा वही स्वयं प्रकाशित होगा और दूसरों को भी प्रकाशित कर सकेगा। जितना जितना स्नेह भरा होगा उतनी ही ज्योति फैलेगी। अतएव जीवन को स्नेहमय, प्रेममय और दयामय बनाना चाहिए। वही जीवन सार्थक है। प्रेममय जीवन की ही बलिहारी है।

हमें जिसे ध्याना है, जिसके गुण गाना है उसके साथ प्रेम का सम्बन्ध जोड़ना चाहिए। यह रिश्ता जोड़े बिना आनंद

की अनुभूति नहीं होगी। और जब यह रिश्ता जुड जाता है तब एक विलक्षण ही आनन्द की अनुभूति होती है। बालक-बालिकाएँ साथ साथ खेलते हैं, साथ साथ रहते हैं परन्तु जब तक उनका सगपण-सम्बन्ध नहीं होता तब तक एक दूसरे के सुख-दुःख की एक दूसरे को विशेष परवाह नही होती परन्तु जब उनका सगपण हो जाता है कच्चा सम्बन्ध हो जाता है तब उन दोनों मे आत्मीयता आ जाती है। वे एक दूसरे का नाम सुनकर, एक दूसरे को देखकर प्रसन्न हो उठते है। सम्बन्ध होने के पहले एक दूसरे के सुख-दुःख की एक दूसरे को अनुभूति नहीं होती थी परन्तु अब सगाई मात्र कच्चा सम्बन्ध हो जाने से उनमें इतनी आत्मीयता आ जाती है कि वे एक दूसरे को दुःखी देखकर दुःखी होते है। और एक दूसरे की अच्छी बातों को खुश खबरियों को सुनकर नाच उठते है। यदि उनमे से जरा किसी को बुखार आ जाता है तो उन्हे असीम दुःख होता है, चिन्ता घेर लेती है और यदि अच्छी बात कुशल-क्षेम के समाचार मिलते है तो प्रसन्नता होती है, आनन्द की लहरें उठती हैं, चित्त प्रफुल्लित हो उठता है। मन-मयूर नाचने लगता है। यह सब क्यो होता है? इसीलिए न कि उनका सम्बन्ध जुड़ गया है। जब तक रिश्ता न जुड़ा था तब भी साथ खेलते थे, साथ रहते थे परन्तु तब वह आनन्द नहीं आता था जो अब आता है। यह सम्बन्ध जुडने का परिणाम है। यह एकरूपता, यह तन्मयता, यह आत्मीयता कैसे आई? सम्बन्ध जुड़ने से ही न? ऐसा ही सम्बन्ध जब प्रभु के साथ जोड़ा जाता है तभी वास्तविक आनन्द आता है। भजन का, स्मरण का,

कीर्तन का आनन्द तब तक पूरा पूरा नहीं आ सकता जब तक प्रभु के साथ यह आत्मीयता का नाता नहीं जोड़ लिया जाता। अतः यदि प्रभु-भजन का आनन्द लेना है तो प्रभु के साथ इस प्रकार का रिश्ता जोड़ना ही होगा।

बन्धुओ! प्रभु से रिश्ता जोडना चाहिए, परन्तु कैसे प्रभु से? असली प्रभु से या नकली प्रभु से? चेतनमय प्रभु से या जड़ प्रभु से? भद्र पुरुषो! जिस प्रभु मे प्रभु–पद के गुण विद्यमान हो, जो अनन्तज्ञान दर्शन का धनी हो, जो सच्चिदानन्द-मय हो उसी प्रभु से रिश्ता जोड़ोगे और नकली जड एवं आकृति-मात्र प्रभु गुण रहित तत्त्व से नाता तोडोगे तो आनन्द आ सकेगा। आप चेतन हैं। आपको चेतन से ही नाता जोडना है। चेतन होकर यदि जड़ से नाता जोड़ोगे तो जड़ जैसे बन जाओगे। क्योंकि जो जैसे को ध्याता है वह वैसा ही बन जाता है। जड़ के साथ नाता जोड़ने से—उसके साथ आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करने से अध्यात्म के पथ पर प्रगति नहीं की जा सकती है। अतएव चैतन्यमय, सन्मय और आनन्दमय अर्हन्त प्रभु के साथ ही ऐसा प्रेम सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। चेतन का जड़ के साथ सम्बन्ध करना ठीक वैसा ही है जैसे बालक-बालिका का गुड्डा-गुड्डी के साथ प्रेम करना है। बालक-बालिकाएँ अपने गुड्डे-गुड्डी से बड़ा प्रेम करती है। वे उन्हें अपनी शक्ति भर सजाती है। लहंगा साडी या धोती पहनाती हैं। नाक में नथ भी पहनाती हैं। सुहाग की चूड़ी भी पहनाती हैं। उसके सामने

मिट्टी के लड्डू और ठीकरी के रुपये भी चढ़ाती हैं। उनका व्याह भी रचाती है। परन्तु उनका गुड्डा-गुड्डी से यह प्रेम कब तक रहता है? जब तक उन्हे असली गुड्डा या गुड्डी नहीं मिलता। जब उन बालक या बालिकाओ का विवाह हो जाता है तब वे पहले के गुड्डा गुड्डी को छोड़ देते हैं क्योकि उन्हे सच्चा गुड्डा-गुड्डी मिल जाता है। यह फटी घघरिया और फटी धोती वाली गुड्डी-गुड्डा केवल बालको के मनोरंजन की ही चीज है। इसमे बालक ही उलझे रहते है, सयाने नही। परन्तु हाल कुछ और ही हो रहा है। ७०-८० वर्ष की आयु वाले भी गुड्डा-गुड्डी के खेल में ही जीवन बिता देते हैं। यह कितने अचरज और खेद की बात है।

बन्धुओ! मानव जन्म पाकर विवेक बुद्धि से काम लेना चाहिए। यदि अविवेक में पड़कर यह दुर्लभ अवसर यों ही गुड्डा-गुड्डी के खेल में बिता दिया तो ऐसा अवसर फिर मिलना बड़ा कठिन होगा। क्योकि शास्त्रकार ने कहा है कि मनुष्य का अन्तर (मनुष्य का भवान्तर में पुनः मनुष्य होने का व्यवधान-काल) जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल है। अनन्तकाल तक फिर मनुष्य-जन्म की प्राप्ति नहीं भी हो सकती है। ऐसे दुर्लभ अवसर को पाकर विवेक से काम लेना चाहिए। नकली को छोड़कर असली से रिश्ता जोड़ना चाहिए।

जिन आत्माओ को वास्तविक अर्हन्त के स्वरूप की प्रतीति हो गई है वे काल्पनिक अर्हन्त के साथ क्यों नाता जोड़ेंगे? जिसे चौतीस अतिशय और पैंतीस वाणी के गुण युक्त अठारह

दोष रहित और बारह गुणसहित सुन्दरतम आराध्य देव प्राप्त हो गया तो वह कृत्रिम देव की शरण क्यों कर लेगा? नकली गुड्डा गुड्डी से किसी को सन्तान नहीं हुई, किसी की वंशावली नहीं चली। अतः कृत्रिम देव को छोड़कर वास्तविक अर्हन्त देव के साथ अपना ऐसा सम्बन्ध जोड़िये कि बस फिर किसी दूसरे के साथ सम्बन्ध जोड़ना ही न पड़े। दूसरे सब सम्बन्धों को छोड़कर यदि एक परमात्मा के साथ ही सम्बन्ध जुड़ जाय उनकी ओर लौ लग जाय, तन्मयता आजाय तो जीवन कृतकृत्य हो जाय और निहाल हो जाय। ऐसा रिश्ता जोड़ने वाले की स्थिति कैसी हो जाती है? सुनिये कवि कहता है:—

वसा दिल में जब से लगी तू ही तू है।
छिपा किस जगह तू मुझे जुस्त जू है॥
हजारों हँसीं मैने देखे जहां में।
न तुझ सा सनम दूसरा खूबरू है॥ बसा दिल में०
हुए तुझ पर शयदा चन्दा व सूरज।
अजब तेरी रंगत अजब तेरी शू है॥ बसा दिल में०

प्रेम-पंथ के पथिकों की दशा प्रेम पंथ के पथिक ही जान सकते हैं। "घायल की गति घायल जाने" यह दशा अनुभव गम्य है। जब दो प्रेमियों का सम्बन्ध जुड़ जाता है, जब वे एक दूसरे के दिल में बस जाते हैं तब उन्हे एक दूसरे से मिलने की ही लौ

लगी रहती है। विरह व्यथा उन्हे असह्य लगती है। वे मिलने के लिए उत्कंठित और लालयित रहते है। संसार की अन्य बातों और अन्य चीजो से उनका मोह हट जाता है और सारी वृत्तियाँ प्रेमी मे ही केन्द्रित हो जाती है। वह सब भूलजाता है और अपना प्रेमी ही उसे दीखता है। उसके दिल मे, दिमाग में, आचार में, विचार मे वही समाया रहता है। वह अपने प्रेमी मे इतना तन्मय हो जाता है कि उसे फिर सर्वत्र वही वही नजर आने लगता है। यह है सच्ची तन्मयता, यह है विशुद्ध प्रेम !

बन्धुओ ! परमात्मा के साथ ऐसी तन्मयता होगी तभी भक्ति का आनन्द आ सकता है। परमात्मा के प्रति ऐसी तन्मयता लाने के लिए दूसरी वस्तुओ मे रही हुई आसक्ति को तिलांजलि देनी होगी। पर वस्तुओं मे आसक्ति और परमात्मा मे भक्ति—ये दो बाते साथ साथ नहीं हो सकती। एक साथ दो घोड़ों पर सवारी नहीं हो सकती। भक्ति एक की ही हो सकती है। या तो परमात्मा की ही भक्ति कर लो या पुद्‌गल (भौतिक पदार्थ) की ही भक्ति करलो। दोनो की भक्ति साथ २ नहीं हो सकती है। भक्ति का अर्थ है समर्पण—अर्थात् किसी एक के बन जाना। किसी एक का बनने के लिए आवश्यक है कि उससे भिन्न अन्य से अपना नाता न रखा जाय। सच्चे प्रेम मे—सच्ची प्रीति मे एक के ही प्रति सम्पूर्ण निष्ठा होती है। यदि आपकी परमात्मा के प्रति भक्ति है तो पर पुद्‌गलों से ममता तोड़नी ही पड़ेगी। विषय वासनाओ से, तन-धन-जनादि से ममता उतारे बिना परमात्मा की भक्ति सही अर्थों मे नहीं हो सकती।

बन्धुओ ! परमात्मा के साथ यदि आप अपना योग करना चाहते है तो विषय-भोग को रोग जानकर उसका परित्याग करना होगा। परमात्म योग और विषयभोग कभी साथ नहीं रह सकते। योग और भोग की लडाई है। दोनो की संगति नही हो सकती। दोनो एक दूसरे के विरोधी है। दोनो की दिशाएँ न्यारी-न्यारी है। इनमे छत्तीस के अंक का रिश्ता है अतः कोई व्यक्ति दोनो का नहीं बन सकता।

कहा भी है:—

रहिमन गली है सांकरी दूजा न रहवाय।
आपू है तो हरि नहीं हरि तो आपू नाय॥

यदि उसे परमात्मा का बनना है, उसके साथ अपना रिश्ता जोड़ना है तो उसे पर-पदार्थों से, विषय वासनाओ से, धन के मोह से रिश्ता तोड़ना पड़ेगा, उनसे आसक्ति हटानी पड़ेगी।

भद्र पुरुषो ! यह जीव अनन्त काल से पर-पदार्थों से प्रीति करता आ रहा है, उनमे आसक्ति रखता आ रहा है यही तो कारण है कि वह परमात्मा की सच्ची भक्ति नही कर पा रहा है। आसक्ति और भक्ति दोनो परस्पर विरोधिनी हैं। इस जीव ने अब तक परमात्मा की भक्ति को विसराया है और पर-पुद्गलो की आसक्ति को अपनाया है इसीलिए तो वह दुःखी है, संसार मे परिभ्रमण कर रहा है, बेचैन और अशान्त बना हुआ है। वह त्रस्त, अधीर, आतुर और आकुल व्याकुल बन रहा है। यदि

वह परमात्मा की भक्ति को अपनाये और परपदार्थों की—भोगों की आसक्ति को विसराये तो उसकी सारी आकुल-व्याकुलता अधीरता, आतुरता, बेचैनी, हैरानी और परेशानी मिट जाती है। करना इतना ही है कि जिसे अपना रखा है उसे छोड़ना है है और जिसे छोड़ रखा है उसे अपनाना है।

बन्धुओ! याद रखिये भोगों में सुख नहीं है। सुख है भोगों की निवृत्ति से। भोग तो अनर्थों की, दुःखों की परम्परा बढ़ाने वाले है। शास्त्रकार ने कहा है:—

"खणमित्तसुक्खा बहुकाल दुक्खा
पगाम दुक्खा अनिगाम सुक्खा"
संसार मोक्खस्स विपक्खभूया
"खाणी अणत्थाण हु कामभोगा"
" सल्लं कामा विसं कामा कामा आसीविसोपमा।
कामे पत्थेमाणा अकामा जंति दुग्गइं ॥"

ये काम भोग बहुत थोड़े समय के लिए काल्पनिक सुख देते हैं परन्तु लम्बे समय तक दुःख की परम्परा बढ़ाते है। इनमें थोड़ा सा सुखाभास है और बहुत अधिक दुःख भरा हुआ है। शहद से भरी हुई तलवार को चाटने से थोड़े समय के लिए क्षण भर के लिए मिठास का अनुभव होता है परन्तु लम्बे काल तक जीभ के कटने की वेदना सहन करनी पड़ती है। क्षणिक मधु के

लोभ में फँसकर नादान प्राणी जीभ कटने से होने वाली दारुण वेदनाएँ भोगते हैं।

काम भोग अनर्थों की खान है और तीखे २ बाण है। ये कांटे की तरह चुभने वाले और भयङ्कर आशीविष सर्प की तरह डँसने वाले है। ये ऊपर-ऊपर से रमणीय प्रतीत होते है परन्तु किंपाक फल की तरह घातक और मारक है। बाल जीव ही इनमे फँसते है। "बालाभिरामेसु दुहावहेसु" यह शास्त्र का पाठ कहता है कि अज्ञ और नादान प्राणियों को ही ये महादुःख प्रदान करने वाले काम भोग अच्छे लगते हैं। समझदार आत्मा तो इनकी असारता, तुच्छता, मोहकता, भयंकरता और कटुकता को जानता है। वह तो इनसे बचकर ही रहता है।

ये काम भोग इतने असार हैं कि बार-बार भोगने पर भी तृप्ति नहीं आती। यदि इनमें सार होता तो तृप्ति का अनुभव होता। परन्तु जिन्होने अपनी असंख्य वर्ष की सारी आयु कामभोग मे ही लगाई उनसे पूछो कि क्या तुम्हें इनसे तृप्ति हुई ? उनका उत्तर यही है कि नहीं ! नहीं !! नहीं !!!

भोगा न भुक्ताः वयमेव भुक्ताः
कालो न यातः वयमेव याताः
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः

अरे ! हमने भोग नहीं भोगे परन्तु भोगो ने हमें भोग लिया है। समय नहीं बीत गया हम बीत गयेहैं। तृष्णा जीर्ण नहीं हुई,

वह परमात्मा की भक्ति को अपनाये और परपदार्थों की—भोगो की आसक्ति को विसराये तो उसकी सारी आकुल-व्याकुलता अधीरता, आतुरता, बेचैनी, हैरानी और परेशानी मिट जाती हैं। करना इतना ही है कि जिसे अपना रखा है उसे छोड़ना है है और जिसे छोड़ रखा है उसे अपनाना है।

बन्धुओ! याद रखिये भोगो मे सुख नहीं है। सुख है भोगो की निवृत्ति से। भोग तो अनर्थों की, दुःखो की परम्परा बढ़ाने वाले है। शास्त्रकार ने कहा है:—

"खणमित्तसुक्खा बहुकाल दुक्खा
पगाम दुक्खा अनिगाम सुक्खा"
संसार मोक्खस्स विपक्खभूया
"खाणी अणत्थाण हु कामभोगा"
" सल्लं कामा विसं कामा कामा आसीविसोपमा।
कामे पत्थेमाणा अकामा जंति दुग्गइं॥"

ये काम भोग बहुत थोड़े समय के लिए काल्पनिक सुख देते हैं परन्तु लम्बे समय तक दुःख की परम्परा बढ़ाते है। इनमें थोड़ा सा सुखाभास है और बहुत अधिक दुःख भरा हुआ है। शहद से भरी हुई तलवार को चाटने से थोड़े समय के लिए क्षण भर के लिए मिठास का अनुभव होता है परन्तु लम्बे काल तक जीभ के कटने की वेदना सहन करनी पड़ती है। क्षणिक मधु के

लोभ मे फँसकर नादान प्राणी जीभ कटने से होने वाली दारुण वेदनाएँ भोगते हैं।

काम भोग अनर्थों की खान है और तीखे २ बाण है। ये कांटे की तरह चुभने वाले और भयङ्कर आशीविष सर्प की तरह डँसने वाले हैं। ये ऊपर-ऊपर से रमणीय प्रतीत होते है परन्तु किंपाक फल की तरह घातक और मारक है। बाल जीव ही इनमे फँसते है। "बालाभिरामेसु दुहावहेसु" यह शास्त्र का पाठ कहता है कि अज्ञ और नादान प्राणियो को ही ये महादुःख प्रदान करने वाले काम भोग अच्छे लगते हैं। समझदार आत्मा तो इनकी असारता, तुच्छता, मोहकता, भयंकरता और कटुकता को जानता है। वह तो इनसे बचकर ही रहता है।

ये काम भोग इतने असार हैं कि बार-बार भोगने पर भी तृप्ति नही आती। यदि इनमे सार होता तो तृप्ति का अनुभव होता। परन्तु जिन्होने अपनी असंख्य वर्ष की सारी आयु कामभोग मे ही लगाई उनसे पूछो कि क्या तुम्हे इनसे तृप्ति हुई? उनका उत्तर यही है कि नहीं! नही!! नही!!!

भोगा न भुक्ताः वयमेव भुक्ताः
कालो न यातः वयमेव याताः
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः

अरे! हमने भोग नहीं भोगे परन्तु भोगों ने हमें भोग लिया है। समय नही बीत गया हम बीत गयेहैं। तृष्णा जीर्ण नहीं हुई,

हम जीर्ण हो गये हैं। तृष्णा ने हमे जीर्ण कर दिया है। वह तो अभी युवती ही बनी हुई है। प्राणी भोगों को भोगना चाहते थे, उनसे तृप्ति पाना चाहते थे परन्तु हाल और ही हो गया, मामला उल्टा ही हो गया। वे भोगों का भोग करना चाहते थे परन्तु भोगो ने उनका भोग ले लिया। भोगो से वे आनन्द और तृप्ति पाना चाहते थे परन्तु वह तो हुआ नहीं। वह तो नहीं हुआ सो नहीं हुआ परन्तु उनकी रही-सही आनन्दवृत्ति और तृप्ति भी इन्होंने लूट ली इन भोगो ने प्राणियों को बेचैन, अशान्त, अधीर लाचार और बेजार बना दिया है। कवि कहता है:—

> जो नर फंसा विषयों के फंद में वह बड़ा लाचार है।
> एक तो पैसा गया दूसरा बीमार है॥

जो मनुष्य विषयों के, काम भोगों के फंदे में फँसता है उसकी बड़ी दुर्दशा हो जाती है। वह दीन-हीन, निस्तेज, निष्प्रभ और निर्वीर्य हो जाता है। आखों की रोशनी फीकी पड़ जाती है, गाल पिचक जाते हैं, शरीर रोगो का घर बन जाता है।

बन्धुओ! आध्यात्मिक और धार्मिक पहलू को छोड़ कर यदि स्वास्थ्य और आरोग्य के पहलू से भी विचार किया जाय तो विषय-वासना का दुष्परिणाम आपको प्रतीत हुए बिना न रहेगा। वीर्यहीन जीवन जीवन ही नहीं है। वह मरण है।

"मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दुधारणात्"

यह आयुर्वेद का सिद्धान्त है। वीर्य नष्ट करना मरण है और वीर्य की रक्षा करना जीवन है। शरीर का राजा वीर्य ही है। यह बहु मूल्य वस्तु है। इस तरफ आज के युवकवर्ग का ध्यान ही नहीं है। शरीर के राजा के प्रति रखी गई यह उपेक्षा शरीर और मन के लिए, आरोग्य एवं शान्ति के लिए भयावह है। जिस मशीन मे से तेल निकल जाता है वह मशीन जल्दी ही घिस-घिस कर टूट जाती है जिस शरीर में से वीर्य रूपी तेल निकलकर समाप्त हो जाता है वह शरीर जीवन रहित हो जाता है। अतः इस ओर युवक और युवतियो को पूरा २ ध्यान रखना चाहिए। विषय-वासना से अपने आपको यथा शक्ति दूर रखना चाहिए। कवि कहता है—

जो नर बचा विषय के फंदे से वह बड़ा होशियार है।
एक तो पैसा बचा दूसरा तन में भी तय्यार है॥

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक–सब पहलुओं से विषय-भोगो से दूर रहना, इस कीचड़ मे न फंसना हितावह है। बन्धुओ! योगमय जीवन की सार्थकता है, भोगमय जीवन की सार्थकता नही है। योगियो को जो आनन्द की अनुभूति होती है वह भोगियो को स्वप्न मे भी नहीं हो सकती।

हाँ, कहने का तात्पर्य यह है कि परमात्मा के प्रति हमारी सच्ची भक्ति तभी हो सकती है जब भोगादि के प्रति आसक्ति कम की जाय। पर पदार्थों से ज्यों २ आसक्ति दूर होती जाएगी त्यो २

प्रभु के प्रति भक्ति बढ़ती चली जाएगी। तब भक्ति के वास्तविक आनन्द का रसास्वादन हो सकेगा। ऐसा रसास्वादन करने के लिए परमात्मा के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ना पड़ेगा। परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नही है। परमात्मा कही जंगल में, गुफा मे, पहाड़ में, कन्दरा मे छिपा हुआ नहीं है। न वह किसी मन्दिर में, मस्जिद में, गुरुद्वारे में गिर्जाघर मे या स्थानक में बंद है। वह तो सब जगह व्यापक है। ज्ञान रूप से वह लोकालोक व्यापी है। सर्वत्र उसका प्रकाश है। उसे प्राप्त करने के लिए दूर २ भटकने की आवश्यकता नहीं है। वह तो तुम्हारे अन्दर ही है। वह तो अन्दर भी है, बाहर भी है, यहाँ भी है, वहाँ भी है। इधर भी है, उधर भी है, वह तो अत्र-तत्र सर्वत्र है।

महबूब मेरा मुझ ही में मुझको खबर नहीं।
ऐसा छुपा है पर्दे में वह आता नजर नहीं॥
कौनसी जा है जहां जलबये माशूक नहीं।
शौक़ दीदार का है तो नजर पैदा कर॥

बस उसे पाने के लिए तो अपना केमरा साफ करने की जरूरत है। केमरा साफ हुआ कि उसका फोटो स्वयं सामने आ जाएगा। इसलिए अपना हृदय रूपी केमरा ठीक कर लो, तय्यार करलो साफ सुथरा करलो तो परमात्मा का चित्र उसमें खिंच जाएगा। हृदय को शुद्ध बनाने के लिए, जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए, प्रभु के गुण गाओ, गाओ, गाओ।

गुणियो के गुण न गाना भी भूल है और निर्गुणियो के गुण गाना भी भूल है। इसलिए एकनिष्ठ होकर परमात्मा के गुण गाने चाहिए। गुण गाओ किसी और के और पास जाओ किसी और के। इससे काम नही चलेगा। जिसके गुण गाना है उसके प्रति एकनिष्ठा जमानी ही चाहिए। भजन का आनन्द लेना है तो जबान से गुण गाना चाहिए और हृदय से परमात्मा को ध्याना चाहिए। भजन और भोजन के आनन्द का अनुभव तभी होता है जब मन भी साथ जुड़ा हो। अतः मनोयोग पूर्वक प्रभु के गुण गाना चाहिए, उन्हे हृदय मे ध्याना चाहिए।

जो मनोयोग पूर्वक अर्हन्त के गुण गाते है वे अन्ततः अर्हन्त ही बन जाते है। शास्त्रकारो ने तीर्थङ्कर गोत्र बधने के बीस बोल बताये हैं। उनमे यह भी है कि अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, स्थविर के गुण ग्राम करता हुआ जीव उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो तीर्थङ्कर गोत्र का बंध कर लेता है। मतलब यह है कि जो शुद्ध हृदय से भावयुक्त अर्हन्त प्रभु के गुण गाता है, उन्हे ध्याता है वह भक्त से भगवान् बन जाता है। आराधक से आराध्य बन जाता है। चाकर से ठाकर बन जाता है। पूजक से पूज्य बन जाता है। अतः अर्हन्त के गुण गाना ही चाहिए, उन्हे ध्याना ही चाहिए। जो इस प्रकार अर्हन्त के गुण गाते है वे अपना जीवन ऊँचा बनाते हैं और इसलोक परलोक मे आनन्द ही आनन्द पाते हैं।

२६—६—५२.
आश्विन शु० ६

पढमं हवइ मंगलं
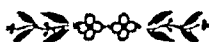
सुखाभिलाषी आत्माओ !

अभी आपके सामने अरिहन्त-प्रभु के स्तवन रूप मंगलाचरण का उच्चारण किया गया है। महा महिमामय अरिहन्त प्रभु का स्तवन परम मांगलिक है। वह अरिहन्त प्रभु का गुणगान मंगल की खान है, सुख का निधान है, परम कल्याण का स्थान है और सकल ऐश्वर्य का निदान है। प्रभु के स्तवन, चिंतन, मनन, कीर्त्तन और निदिध्यासन में सर्वोत्कृष्ट मांगलिकता रही हुई है। यही कारण है कि संसार के समस्त तत्त्वदर्शी, दूरदर्शी, अनुभवी ऋषि मुनियों, विद्वानों और शिष्टविशिष्ट महा-

पुरुषों ने कार्यारम्भ में मंगलमय परमात्मा का स्मरण करने का विधान किया है।

मंगल परम आह्लादक तत्त्व है। इसका मंगलमय नाम श्रवण करते ही चित्त में आह्लाद, प्रमोद, हर्ष और उत्कर्ष की ऊर्मियाँ उठने लगती है। हृदय रूपी हृद में हर्ष की उत्ताल तरंगें तरंगित हो जाती है। दिल और दिमाग में नवीन स्फूर्ति, नई चेतना, नई प्रेरणा और नया उत्साह प्रकट हो जाता है। सब लोगों को यह अत्यन्त प्रिय और स्पृहणीय है। सब मंगल की कामना करते है। सब मंगल चाहते हैं। अमंगल कोई नहीं चाहता।

मंगल साधारण वस्तु नहीं है। सारी दुनियां जिसकी कामना करती है वह साधारण वस्तु नहीं होती। वह असाधारण वस्तु हुआ करती है। यदि हम मंगल शब्द की अन्तरात्मा का अवलोकन करे, यदि हम गहराई में उतर कर इस पर विचार करे तो मंगल में हमें अमोघ शक्ति, अलौकिक ताकत और अद्-भुत बल प्रतीत होगा। जहाँ दुनिया के अन्य शस्त्रास्त्र काम नहीं करते वहाँ मंगल कारगर होता है।

यद्यपि शस्त्रास्त्रों से भी मनुष्य विजयी बनता है। वह शस्त्रों के बल पर, एटम बम के बल पर विजय पताका फहराता है। बड़े २ साम्राज्य स्थापित करता है और अपनी विजय के स्मारक खड़े करता है। वह बड़े २ विशाल दुर्ग और मजबूत किले बनाता है, अपनी विजय की कहानी को चिर जीवी बनाने के लिए कीर्ति-स्तम्भ खड़े करता है। परन्तु यह सब करने पर भी

उसकी वह विजय और विजय की कहानी उसी प्रकार चंचल होती है जैसे वायु से हिलती हुई पताका। दुनियावी और मायावी क्षेत्र मे मनुष्य शस्त्रास्त्रों से कामयाबी प्राप्त करता है परन्तु उसकी वह कामयाबी-सफलता-अस्थायी होती है। एक बार कामयाब होकर भी वह दूसरी बार असफल और पराजित हो जाता है। उससे अधिक शस्त्रास्त्रो की शक्ति वाला सामने खड़ा हो जाय तो उसे हार खानी पड़ती है। उसकी एक बार की विजय अब पराजय मे बदल जाती है। उसकी जीत अब हार बन जाती है। मतलब यह है कि शस्त्रास्त्रो से मिलने वाली विजय वास्तविक विजय नहीं है, परम विजय नहीं है। वह क्षणिक विजय है और ऐसी विजय है जिसकी तह में पराजय छिपी पड़ी है। इसके विपरीत आध्यात्मिक क्षेत्र मे मिलने वाली विजय वह परम और चरम विजय है जिसमें फिर हारने का कभी काम ही नहीं। वह आत्म विजय शाश्वत विजय है। वह कभी पराजय में नहीं बदल सकती। वह आत्म विजय सदा जय ही रहती है जय ही रहती है इसलिए शास्त्रकार ने कहा है:—

एस से परमो जओ

आत्मिक विजय ही सर्वोत्कृष्ट विजय है।

भौतिक विजय, शस्त्रास्त्रों से प्राप्त की जाने वाली विजय में तो तारतम्य और पारंपर्य पाया जाता है। उसमें एक से दूसरा, दूसरे से तीसरा, तीसरे से चौथा अधिक बलवान् होता है इस-

लिए वहाँ तो अपने से अधिक से सदा भय और शंका बनी रहती है। जिसका पुण्य उदय मे आया होता है वह विजयी होता है। जब पाप का उदय होता है तो वह पराजित हो जाता है।

भगवती सूत्र मे प्रश्न किया गया है कि हे भगवन्! दो मनुष्य समान बलवान् है, दोनो युद्ध कला में निपुण है, दोनों के पास बाह्य सामग्री समान है परन्तु रणभूमि मे एक जीतता है और दूसरा हारता है, हे भगवन्! ऐसा किस कारण से होता है?

भगवान् उत्तर देते है:—वहाँ पर एक अन्तरंग शक्ति गुप्त रूप से काम कर रही है। स्थूल दृष्टि से वे बराबर के है, मुकाबले के हैं, बाह्य सामग्री में समानता है परन्तु अन्तरंग सामग्री में अन्तर है। जिसकी विजय होती है उसका पूर्व पुण्य बलवान् है। जिसकी पराजय होती है उसके उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार-पराक्रम उदय मे आया है। दूसरे के पास सामग्री तो है परन्तु उसने पराघात नाम कर्म का (दूसरो पर विजय पाने का) बंध नही किया। इस लिए प्रायः उसके शस्त्र उस पर ही काम आते है। प्रति वासुदेव वासुदेव का संहार करने के लिए अपना सुदर्शन चक्र बार २ भेजते हैं परन्तु वह लौट आता है और उसके ही चक्र से उसकी मृत्यु होती है। शस्त्रास्त्र भी उसी के काम करते हैं जिसके पुण्य का उदय है। जिसके पुण्य का उदय नही है उसके शस्त्रास्त्र दूसरे के हो जाते है और उसके ही मारक और घातक बन जाते है।

दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग़ से।
इस घर को आग लग गई घर के चिराग से॥

जिसके पुण्य रूप शुभ कर्म उदय मे होते हैं, परिस्थितियाँ भी उसी के अनुकूल बनती है। जिसके पुण्य रूप शुभकर्म उदय मे नहीं हैं परिस्थितियाँ उसके प्रतिकूल होती है। शरीरबल, सामग्रीबल बराबर होने पर भी एक की विजय और दूसरे की हार का कारण पुण्य रूपी अन्तरग सामग्री है।

हाँ तो, जिसकी अन्तरंग सामग्री बलवान् होगी वही विजय पा सकेगा। जब तक पुण्य का उदय हो तब तक ही विजय टिकेगी। जब पाप का उदय हो जाता है तब वह विजय पराजय में बदल जाती है। जो अधिक शक्तिशाली होगा वह विजय प्राप्त कर लेगा। इस तारतम्य और पारम्पर्य (एक से अधिक दूसरा बलवान्, दूसरे से तीसरा बलवान्) के कारण बाह्य संग्राम मे पाई हुई विजय में सदा पराजय का भय रहता है। उस विजय मे पराजय की आशंका बनी रहती है। रूस और अमेरिका ने जर्मनी पर विजय प्राप्त की परन्तु दोनों विजेताओं के मन सशंकित है, आशंकित हैं, भयभीत है। रूस को अमेरिका का भय है और अमेरिका को रूस से खतरा है। यह भौतिक विजय की क्षणिकता, चंचलता, नश्वरता और सशंकितता !!

आत्मिक विजय मे किसी प्रकार की आशका, भय और पराजय का अवकाश ही नहीं है। वह विजय परम और चरम है।

ऐसी आध्यात्मिक विजय प्राप्त करने के लिए मंगल पाठ एक उपयोगी और महत्त्वपूर्ण साधन है। जहाँ अपने क्षेत्र में अन्य शस्त्रास्त्र असफल हो जाते है ना कामयाब हो जाते हैं वहाँ मंगल पाठ कामयाब होता है। शस्त्रास्त्र पुण्य बल होने पर किसी विरोधी का बाह्य शत्रु का थोडे समय के लिए विध्वस कर सकते है परन्तु आभ्यन्तर शत्रुओं पर उनका तनिक भी जोर नहीं चल पाता। बड़े बडे योद्धा यहाँ हार खा जाते है। अन्तरंग शत्रुओ पर विजय पाने के लिए अन्तरंग साधन ही चाहिए। बाह्य साधन यहाँ काम नही आते। अन्तरंग शत्रु हैं-काम, क्रोध, मोह आदि पाप कर्म। ये पाप कर्म जीवात्मा को पीडित कर रहे है, व्यथित कर रहे है दुःख दे रहे हैं। इन्हे खदेड़ने के लिए मंगल की आवश्यकता है। मंगल पाठ वह उत्तम और अमोघ साधन है जो पाप कर्म के पुंज को उड़ा सकता है।

मंगल शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है:—

" मां गालयतीति मंगलम् " जो पापों को गला दे, विध्वंस कर दे वह मंगल है। निश्चय ही मंगल मे ऐसी शक्ति है। इसके लिए प्रमाण की कोई आवश्यकता नही है। यह स्वयंसिद्ध बात है। फिर भी प्रमाण चाहिए तो लीजिए शास्त्रीय प्रमाण:—

एसो पंच णमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं॥

यह पंचपरमेष्ठी नमस्कार मंत्र की महिमा बताने वाला पाठ है। इसमे कहा गया है कि यह पंचपरमेष्ठी को किया हुआ नमस्कार सब पापों को नष्ट करने वाला है और सब मंगलों में प्रथम सर्वोत्कृष्ट मंगल है। पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करने से, उनका चिन्तन और मनन करने से उनकी गुणराशि को दोहराने से उन्हें हृदय में बिठाने से, सब पाप नष्ट हो जाते है। यह परम मांगलिक है।

प्रश्न होता है कि जन्म जन्मान्तर के परम्परागत संचित महापुंज रूप पाप कर्म मंगल पाठ के स्मरण मात्र से कैसे नष्ट हो सकते हैं? इसका उत्तर है कि सज्जनो! सूखे हुए घास की हजारों पूलियो और रुई की हजारों गांठो की राशि को छोटी सी दियासलाई से उत्पन्न अग्नि थोड़ी सी देर में ही भस्म कर देती है इसी प्रकार शुद्ध हृदय से उठी हुई मंगल पाठ की चिनगारियाँ पाप के महापुंज को भस्मीभूत कर देती हैं।

मंगल दो प्रकार के होते हैं:—लौकिक मंगल और लोकोत्तर मंगल। लौकिक मंगल भी नाना प्रकार के हैं। दूब भी मंगल मानी जाती है। दूब का छल्ला बनाकर धारण किया जाता है। विवाह शादी में, घर में प्रवेश के मुहूर्त में, कार्यारम्भ में कुंकुम अक्षत आदि भी मंगल माने जाते हैं। परदेश जाते समय दही खाना और गुड़ खाना मंगल माना जाता है। मौली—लच्छा बाँधना भी मंगल माना जाता है। ये सब लौकिक मंगल हैं। लोगों ने अपनी कल्पना से इन्हे मंगल मान लिया है। अपने इच्छित कार्यों में

विध्न पैदा न हो इस भावना से लोगो ने यह कल्पना की है। ये सब कल्पित मंगल हैं। वास्तविक मंगलता इनमे नही है। यह सारा कल्पना का ही विस्तार है।

घुडसवार को देखकर घोड़े पर सवार होने की बच्चे की इच्छा होती है। वह मां-बाप के समक्ष अपनी इच्छा व्यक्त करता है और घोड़ा मांगता है। माता-पिता वास्तविक घोड़े पर चढ़ने की उसकी अयोग्यता का ध्यान रखकर घोड़ा नही देते है। बालक मे घो पर चढ़ने की लगन है। इस लिए वह लकड़ी को घोड़ा बना लेता है। उसके सिरे पर रस्सी बांधकर उसे लगाम समझ लेता है। वह उस पर सवार हो जाता है। बड़े अभिमान के साथ वह गाता है:—

हमारा घोड़ा खाता है तिल्ली।
जाता है दिल्ली
खाता है चावल, जाता है पेशावर ॥

वह लकड़ी का घोड़ा न तिल्ली खाता है और न दिल्ली जाता है। वह केवल उस बालक की कल्पना है। वह बालक खुद दौड़ता है और कहता है कि घोड़ा सरपट दौड़ रहा है। वह लकड़ी का घोड़ा उसे नही ले जारहा है परन्तु वह उस कल्पित घोड़े को ले जा रहा है। कल्पित वस्तु किसीको कही नहीं ले जा सकती है मनुष्य उसे ले जाता है। जो कल्पना के चक्कर में पड़ते हैं वे कलपते ही रहते हैं। बालक पहले आराम से बैठा था। सवार

होने की उमंग जगी। कल्पित घोड़ा बनाया और सवार हुआ। खुद दौड़ २ कर थकता है परन्तु मानता है कि घोड़ा दौड़ रहा है। यह बाल बुद्धि की कल्पना ही तो है।

बच्चे यदि लकडी का कल्पित घोडा बना कर और उस पर चढ़कर संतोष मान लें तो वह क्षन्तव्य है परन्तु यदि मां-बाप लकड़ी के घोड़े पर चढ़ कर मजिल तय करना चाहे तो वे उपहास के ही पात्र बनेगे। देखना कहीं ऐसे कल्पित घोडे के बल पर दिल्ली या पेशावर के लिए प्रस्थान मत कर देना। यदि ऐसा करोगे तो थक कर बीच मे ही कष्ट उठाना पडेगा। न इधर के रहोगे न उधर के। वही दशा होगी–गये दोनो जहां से गुजर न इधर के रहे न उधर के रहे। जब बालक को पता चल जाता है कि वह लकडी का घोड़ा नहीं दौड रहा है यह तो कल्पित घोड़ा है, मेरे पैर दौड रहे हैं तो वह उसे शीघ्र ही परित्याग कर देता है परन्तु यहाँ तो अजीब ही हाल है ! ७०-८० वर्ष के होकर भी लोग लकड़ी के कल्पित घोड़े पर ही सवार हो रहे हैं !

कहा जा सकता है कि लकड़ी का घोड़ा घोड़ा नहीं है परन्तु स्थापना निक्षेप से वह घोड़ा कहा जाता है। उसमें घोड़े का आरोप किया जाता है। उसमें घोड़े के गुण तो नहीं है परन्तु उसके गुणो का उसमे आरोप करते हैं। यदि ऐसा है तो आरोप करने वाले का दर्जा ऊँचा रहा। जिसमें स्वय तो गुण नहीं हैं परन्तु दूसरा व्यक्ति उसमें गुणों की स्थापना करता है तो निर्गुणी में गुणों की स्थापना करने वाले की श्रेणी ऊंची रही तो उसे

नमस्कार क्यों कर किया जाना चाहिए ? निम्न श्रेणी वाला उच्च श्रेणी वाले को नमस्कार करता है यह तो ठीक है परन्तु उच्च श्रेणी वाला निम्न श्रेणी वाले को नमस्कार करे यह कैसे उचित हो सकता है ?

बन्धुओ ! केवल किसी वस्तु मे कल्पित गुण स्थापन कर लेने से काम नहीं चल सकता है। ठिकरी रूपया नही है। यदि कोई व्यक्ति उसमें रूपये की स्थापना कर ले तो क्या बाजार में उस ठिकरी के रूपये से सौदा मिल सकेगा ? कभी नही। ठिकरी तो ठिकरी ही है। रूपया रूपया ही है। ठिकरी रूपया नही थी, नहीं है और नही होगी। जब उसमें रूपये की कल्पना नहीं की थी तब भी वह ठीकरी थी, जब रूपये की कल्पना कर ली तब भी ठीकरी ही है और कल्पना छोड़ दी तब भी वह ठीकरी है। कल्पना के रूपये से काम नही चल सकता है। सौदा तो असली रूपये से ही मिलेगा। नकली लकड़ी का घोड़ा मंजिल पर नही जा सकता। मंजिल पर जाने की इच्छा रखने वाला बुद्धिमान व्यक्ति उस पर सवार नही हो सकता। यदि हमे मोक्ष रूप मंजिल पर पहुँचना है तो असली अर्हन्त प्रभु की गुणावलियाँ रूप सवारी का ही आश्रय लेना होगा। उनकी ही स्तुतियाँ गानी होगी कल्पित अर्हन्त की गुणावलियों से काम नही चलने वाला है।

हाँ तो दूध, दही, गुड़, लच्छा आदि वास्तविक मंगल नहीं है किन्तु काल्पनिक मंगल है। जो वास्तविक मगल होते हैं वे सदा मंगल रूप ही रहते हैं उनसे कभी अमंगल नहीं हो सकता।

वास्तविक मंगल त्रिकालभावी मंगल होता है। वह भूतकाल, वर्त्तमान काल और भविष्य काल में भी मंगल ही था, मगल ही है और मंगल ही रहेगा। लौकिक मंगलो मे यह बात नहीं होती। वे अमंगल रूप भी हो जाते है।

थोड़ा सा दही खा ले तो मंगल और अधिक दही खा जाय तो मंगला !! थाडा सा गुड़ खा ले तो मंगल और भेलो खा जाय तो मंगला !! मौलि बांध ले तो मंगल और मण भर मौलि बांध ले तो मंगला !!! कैसी कल्पना है। भला जो चीज मंगल रूप है तो उसका अधिक मात्रा मे सेवन अमगल रूप कैसे हो सकता है? 'अधिकस्य अधिकं फलं' के अनुसार तो उससे ज्यादा मंगल होना चाहिए। परन्तु ऐसा होता नही है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि दूर्वा, गुड़, दही, कंकुम आदि काल्पनिक मंगल वस्तुत: मंगल नहीं हैं।

जो वास्तविक मंगल होता है वह हर व्यक्ति का, हर समय मे कल्याणकारी ही होता है। उसमें व्यक्ति और समष्टि का, जाति पांति का, कुल का, उच्च नीच वर्ण का, क्षेत्र का और समय का भेद नहीं रहता। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि वह अमुक व्यक्ति को तो सुख प्रदान करे और अमुक को न करे; अमुक समाज या जाति वाले का कल्याण करे अमुक का न करे; अमुक वर्ण वाले का, अमुक देश वाले का तो कल्याण करे और अमुक का न करें; ऐसा भी नहीं हो सकता कि वह अमुक समय में तो मंगल रूप होता है और अमुक समय मे नहीं होता। वास्तविक मंगल

मे इस प्रकार का भेद भाव, या पक्षपात नहीं होता। वह तो सदा एक रूप रहता है, सर्वत्र एक रूप रहता है, सब के लिए एक सा कल्याणप्रद होता है। वह प्रत्येक काल मे, प्रत्येक व्यक्ति के लिए कल्याण रूप ही होता है। लौकिक-काल्पनिक मंगलो में यह बात नहीं होती। वे एकान्तिक और आत्यन्तिक मंगलरूप नहीं होते। उदाहरण के लिए दही गुड आदि मंगल मानी जाने वाली चीजो को ही लीजिए। दही मंगल माना जाता है परन्तु जिसके कफ का प्रकोप है वह दही खा ले तो उसे वह दु:ख रूप ही हो जाता है। गुड़ मंगल माना जाता है परन्तु जिसे खून का विकार है वह गुड खा जाय तो अधिक खून विकृति से लेने के देने पड जाते हैं। मगल की जगह अमगल हो जाता है। लच्छा पवित्र और मंगल माना जाता है परन्तु मण भर बांध दिया जाय तो बन्धन बन जाता है। दूब पवित्र समझी जाती है परन्तु दूब खाने वाली गाय पर भी कसाई छुरी चला देता है। मतलब यह हुआ कि ये दही, गुड, दूर्वा, आदि मंगल मानी जाने वाली वस्तुएँ अमंगलमय भी बन जाती हैं। मनुष्य ने इन्हे मंगलमय जानकर अपनाया परन्तु ये तो अमंगलकारी भी हो जाया करती हैं। मंगल के लिए की जाने वाली लौकिक विधियाँ अमंगलमय भी सिद्ध हुई है। इसलिए लौकिक और काल्पनिक मंगल वस्तुतः मंगल नहीं है। क्षणिक व्यामोह मे पड़कर लोग इन्हे मगल मान लेते है परन्तु ये वस्तुतः मंगल नही हैं। वस्तुतः मंगल वही है जो शाश्वत है, आत्यन्तिक है, एकान्तिक है और सदा सर्वत्र एक रूप है। लोकोत्तर मंगल ही ऐसा वास्तविक मंगल है।

लोकोत्तर मंगल वे मंगल है जो तीन काल मे भी असंगल रूप नही हो सकते । वे अतीत काल में भी मंगल रूप ही थे, वर्त्तमान में भी मगलरूप ही होते है और अनागत (भविष्य) काल मे भी मंगल रूप ही रहेगे । वे कभी अन्यथा नही होते। वे सार्वकालिक और सार्वदेशीय होते है । लोकोत्तर मंगल से बढ़कर और उत्तम मंगल कोई नहीं है । ये अनुपम हैं । इनके समान ये ही हैं । जैसे आकाश के समान आकाश ही है और समुद्र के समान समुद्र ही है । इन्हें और किसी उपमा से उपमित नही किया जा सकता । ये अपनी उपमा आप ही हैं । इसी तरह ये लोकोत्तर मंगल अपने जैसे आप ही होने से अनुपम हैं । इन्हे कोई दूसरी उपमा बराबर संगत नहीं होती है । लोकोत्तर मंगल ही सर्वोत्तम मंगल है ।

ये लोकोत्तर मंगल चार हैं:—१ अरिहंता मंगलं २ सिद्धा मंगलं ३ साहू मंगलं और ४ केवलि पण्णत्तो धम्मो मगलं । अरिहंत मंगल है, सिद्ध मंगल है, साधु मंगल हैं और केवली के द्वारा कहा हुआ धर्म मंगल है । अरिहंत और सिद्ध ये दो देव पद है । "साहू" शब्द से आचार्य, उपाध्याय और सामान्य साधु का ग्रहण किया है । यह गुरुपद है । चौथा धर्म पद है । अर्थात् देव, गुरु और धर्म रूप त्रिपदी ही लोकोत्तर मंगल है । इस मंगल चतुष्टयी मे वह मांगलिकता है, वह कल्याण-शक्ति है, वह सुख का सागर लहरा रहा है जो अन्यत्र कहीं दृष्टिगत नहीं हो सकता । भयंकर तूफान और झंझावात के बीच भी यह मंगल चतुष्टयी परमानन्द-दायिनी होती है । आवश्यकता है केवल श्रद्धा की अडोल और

अकम्पित बनाये रखने की । यह मंगल चतुष्टयी सच्चे सुख की सरिता है। यह परम पावनी मन्दाकिनी है, और भवान्धकार में प्रकाश करने वाली सौदामिनी हैं।

इस मगल चतुष्टयी में आदि के दो मंगल आध्यात्मिक क्षेत्र के साधक के लिए आदर्श रूप है। अर्हन्त और सिद्ध प्रत्येक मुमुक्षु के लिए आदर्श रूप है। जिन पवित्र आत्माओं ने राग-द्वषादि अन्तरग वैरियां का समूल विनाश कर दिया है और आत्मा की शक्तियो का परिपूर्ण विकास कर लिया होता है वे शरीर धारी-जीवन्मुक्त आत्माएँ अर्हन्त कहलाती हैं। जो आत्माएँ उक्त प्रकार का विकास करके और भी आगे बढ़ जाती है, जो कृतकृत्य हो जाती है, जिनकी साधना सम्पूर्णतया सिद्ध हो जाती है वे आत्माएँ सिद्ध कहलाती है। मुमुक्षु के लिए ये अरिहन्त और सिद्ध आदर्श रूप है। इन के गुणो से प्रेरणा प्राप्त कर मुमुक्षु अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता रहता है।

तीसरा मंगल "साहू मंगल" है। आज के युग में मोक्ष मार्ग को प्रदर्शित करने वाले, शान्ति का सच्चा रास्ता बताने वाले, आत्म साधना क्षेत्र के प्रभावशाली नेता और अध्यात्म-सैन्य के सेनानी विशुद्ध चरित्रशील, पंचमहाव्रत धारी, साधु ही हैं। चौथा मंगल धर्म मंगल है। धर्म का स्थान चौथा होने से इसे गौण या कम महत्त्व का नहीं समझ लेना चाहिए। सच पूछिये तो यह धर्म मंगल ही अन्य तीन मंगलों का मूलाधार है। अरिहन्त मगल, सिद्ध मंगल और साधु-मंगल का जन्मदाता

धर्म मंगल ही है। धर्म साधना से ही तो अरिहन्त, सिद्ध और साधु बनते हैं। सब मंगलो का मूल धर्म मंगल है। धर्म से ही विश्व में शान्ति है। यही शान्ति और कान्ति का दाता है अतएव यही सर्व श्रेष्ठ मंगल है। शास्त्रकार कहते है:—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥

धर्म सब मंगलों मे उत्कृष्ट मंगल है। प्रश्न होता है कि धर्म श्रेष्ठतम मंगल है यह ठीक है परन्तु कौन-सा धर्म मगल है? दुनिया मे नानाविध धर्म प्रचलित है। सब अपने २ धर्म को मंगल मानते हैं तो सचमुच कौनसा धर्म मंगलमय है?

शास्त्रकार ने इस प्रश्न का समाधान भी उक्त गाथा के द्वारा उत्तम ढंग से स्पष्ट कर दिया है। जब से 'धर्म' शब्द का प्रयोग सम्प्रदाय, मत, पथ से लिया जाने लगा तब से सच पूछो तो धर्म की छीछालेदर-ही हुई है। धर्म जैसे स्वतंत्र ठोस और व्यापक सर्व कल्याणक वस्तु को सम्प्रदाय के बन्धन में बांध देने से उसका वास्तविक रूप विकृत हो गया है। वास्तविक धर्म सब सम्प्रदाय, मत, पंथ से ऊपर की वस्तु है। सनातन धर्म, आर्यसमाज, जैन, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई आदि सम्प्रदाय हैं और अहिंसा, दया, सत्य, त्याग, संयम, तप आदि धर्म हैं। सम्प्रदाय को मंगल नहीं कहा है परन्तु धर्म को मंगल कहा है और स्पष्ट घोषणा कर दी है कि अहिंसा, संयम और तपोमय धर्म ही धर्म

है। खाना-पीना, नाचना, कूदना, इन्द्रिय पोषण करना आदि धर्म नही है। जहाँ अहिंसा, सत्य और तप की त्रिवेणी बह रही हो वही धर्म है फिर वह चाहे जिस संज्ञा से सम्बोधित किया जाता हो। धर्म की परिभाषा इस श्लोक मे निष्पक्षपात रूप से बड़े सुन्दर ढंग से की गई है:—

धारणाद्धर्म इत्याहु धर्मो धारयते प्रजाः।
यः स्याद् धारणा संयुक्तं स धर्म इत्युच्यते॥

धृ धातु से धर्म शब्द बना है। जो प्रजा को धारण करता है वह धर्म है। दुर्गति—दुराचरणादि से गिरते हुए को जो धारण करता है—अर्थात् बचाता है वह धर्म है। जहाँ यह त्रिवेणी नही है वहाँ धर्म नही है। मतलब यह हुआ कि धर्माराधना मे वर्ण, जाति और सम्प्रदाय का कोई भेद नही है। जो कोई भी अहिंसा, संयम और तप रूप गंगा—यमुना—सरस्वती के त्रिवेणी संगम मे स्नान करता है वह किसी भी जाति का क्यो न हो, किसी भी पंथ या मजहब का क्यो न हो, किसी भी कुल का क्यों न हो, धनी हो या निर्धन, राजा हो या रंक, युवक हो या वृद्ध हो, नर हो या नारी हो, वह स्नातक पद का अधिकारी बनता है।

आजकल युनिवरसिटियो और गुरुकुलो की उच्च परीक्षोत्तीर्ण छात्र भी स्नातक कहलाते है। परन्तु वस्तुतः उन्हे स्नातक नहीं कहा जा सकता है। सच्चा स्नातक तो वह है जिसका मैल धुल

गया हो-जिसमे से वासना आदि कुसंस्कारों का मैल चला गया हो। जो शुद्ध संस्कार वाला हो गया हो, शुद्ध आचार और शुद्ध विचार वाला हो गया हो वही स्नातक कहला सकता है। आज के स्नातक पदवी धारी सिगरेट पीते है, फेशन में फँसे रहते है, कुव्यसनो और वासना के शिकार बने रहते है, सिनेमा के शौकीन होते हैं। फिर कैसे माना जाय कि ये स्नातक है। जिसके शरीर पर मैल चढ़ा हुआ है उसे स्नान किया हुआ कैसे माना जा सकता है ? गुरुकुल और युनिवरसिटियों का आदश तो यही होता है कि छात्रो मे से कुसस्कार निकाल कर उन्हे सुसंस्कारी, सुविचारी और शुद्ध आचारी बनाया जाय । परन्तु आज की शिक्षण संस्थाओ से निकलने वाले छात्र इस आदर्श के अनुकूल प्राय. नहीं पाये जाते। प्राय: वे धर्म के संस्कार से हीन बन जाते है। गये थे धर्म संस्कार पाने, और आये धर्म-सस्कारो को गँवा कर! "गये थे नमाज माफ कराने रोजे गले पड़े" वाली कहावत चरितार्थ होती है। आवश्यकता इस बात की है कि आधुनिक शिक्षण पद्धति मे परिवर्त्तन किया जाय। आज देश को, राष्ट्र को, समाज को, जाति को ऐसे व्यक्तियो की आवश्यकता है जो सुसंस्कारी हों, शुद्ध आचारवान् शुद्ध विचारवान् और धर्म निष्ठावान् हों।

हाँ, तो, सच्चा स्नातक वह है जो अहिसा, संयम और तप रूप त्रिवेणी संगम मे स्नान कर पवित्र बन चुका हो। उत्तराध्ययन सूत्र के बारहवें अध्ययन में एक ऐसे ही भावुक स्नातक का अधिकार चला है। उस अध्ययन में किसी राजा-महाराजा या चक्र-

वर्त्ती की प्रशंसा या गुणावली नहीं गायी गई है। इसमे एक चाण्डाल कुलोत्पन्न महात्मा की गुणावली दी गई है और स्पष्ट घोषणा की गई है कि—

सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो न दीसइ जाइ विसेस कोवि।
सोवागपुत्तो हरिएस साहू जस्सेरिसा इड्ढी महाणुभागा॥

आध्यात्मिक क्षेत्र मे जाति का, वर्ण और कुल का कोई महत्त्व नहीं है। इस क्षेत्र मे तो तप का माहात्म्य है, संयम की विशेषता है और त्याग की महत्ता है। जाति स चाण्डाल होने पर भी हरिकेशी मुनि की आत्म साधना मे वह विलक्षण शक्ति थी कि देवता भी उनके चरणो की सेवा किया करते थे। शास्त्रकार तो खुली घोषणा करते हैं कि 'देवावि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो" देव भी उसे नमस्कार करते है जिसका मन सतत धर्म मे लगा रहता है। यहाँ ऐसा नहीं कहा गया है कि अमुक कुल के अमुक जाति के, अमुक सम्प्रदाय के व्यक्ति को देवता नमस्कार करते हैं परन्तु यह कहा गया है कि जो धर्म साधना में सदा रत है वह चाहे किसी भी जाति, कुल, वर्ण, पंथ, मजहब या सम्प्रदाय का हो देवगण भी उसके चरणों मे सिर झुकाते हैं। यह बलिहारी है तप की, त्याग की, अहिंसा की और संयमसाधना की। धार्मिक जगत् मे जाति का तनिक भी महत्त्व नहीं है। कहा भी है—

> जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
> मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान॥

रण क्षेत्र मे तलवार की कीमत होती है म्यान की नहीं। साधु की कीमत उसके तपोमय जीवन से है, जाति से नहीं। हरिकेशी मुनि श्वपाक (भंगी) के कुल में उत्पन्न हुए थे परन्तु आत्मसाधना के द्वारा वे नरेन्द्रो के ही नहीं सुरेन्द्रो के भी पूजनीय बन गये।

हरिकेशी मुनि भिक्षा के निमित्त ब्राह्मणो के यज्ञवाड़े मे पहुँचे। वहाँ बड़े २ विद्यावारिधि, महामहोपाध्याय सरस्वती-कंठाभरण पण्डित उपस्थित थे। तप से परिशोषित मुनि को आता हुआ देखकर जातिमद के अभिमानी ब्राह्मण उनका उपहास करते हुए कहने लगे कि अरे यह कौन काला-कलूटा, चपटे नाकवाला, मैले-कुचेले वस्त्रवाला चला आ रहा है? दूर हट यहाँ से। क्यो यज्ञ को अपवित्र करने के लिए यहां चला आरहा है? यहाँ तुझे कुछ नहीं मिलने वाला है। यह अन्न-जल भले ही नष्ट हो जाय हम तुझे यह नहीं देंगे। मुनि ने शांति के साथ दान के क्षेत्र के संबंध में समझाया तो जाति और विद्या के मद से अन्धे बने हुए अध्यापक अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और अपने छात्रों से बोले कि है यहाँ कोई जो इसे मार कर यहाँ से भगा दे। यह सुनकर वे छात्र उन मुनि को मारने लगे। मुनि की त्याग-वृत्ति से प्रभावित बनी हुई राजकुमारी सुभद्रा ने उनको समझाया कि यह महा मुनि हैं, महा ब्रह्मचारी हैं, महा तपस्वी है इनकी अवहेलना न करो। इनका उपहास और अवहीलना करना मौत के साथ खेलना है। इनका अपमान कर पतंग की तरह दीपक पर गिर कर क्यों नष्ट हो रहे हो? इधर सुभद्रा उन्हें समझा रही है। उधर मुनि के

तपोबल से उनका भक्त बना हुआ देवता अपने आराध्यदेव का यह तिरस्कार सहन न कर सका। मुनि तो मार और तिरस्कार को सह गये परन्तु भक्त भला कब सहन करने वाला था। उसने उन सब छात्रों को औंधे डाल दिये। मुख से रुधिर बहने लगा। तब सुभद्रा फिर कहने लगी कि यह तपस्वी मुनि के तिरस्कार का दुष्परिणाम है। मुनि का अपमान करना पहाड़ को नख से खोदना है, लोहे को दांत से चबाना है और अग्नि को पाँव से कुचलना है। यदि तुम अपनी खैर चाहते हो तो मुनि के चरणों की शरण लो। लाचार होकर वे अध्यापक मुनि के पास आये और कहने लगे—भंते! हमारा अपराध माफ कीजिए। इन बालकों ने अज्ञान वश आपका तिरस्कार किया है परन्तु आप तो दयालु है क्षमा के सागर है, इन बालकों का अपराध क्षमा कीजिए। साधु तो क्षमा और शान्ति के सागर हुआ करते है। हम क्षमा चाहते हैं, आप क्षमा दान दीजिए।

मुनि तो अपने ध्यान में लीन थे। उन्हे यह पता नहीं था। जब उन्होंने उन कुमारो की यह दशा देखी तो दया से उनका हृदय द्रवित हो गया। वे बोले कि— इस कार्य मे न पहले मेरा हाथ था, न है और न रहेगा। मुझे न पहले द्वेष था, न है और न रहेगा। यह तो किसी और अर्थात् सेवक यक्ष का ही काम है।

यक्ष ने भी सोचा कि दयालु मुनि को मेरा यह कार्य पसंद नही है और मै इन कुमारो को और अध्यापको को दण्ड भी दे चुका इसलिए अब यह माया हटा लूँ। उसने अपनी माया हटा ली और बालको को स्वस्थ बना दिये।

तव वे अध्यापक बोले—हे महामुने ! हम आपकी पूजा करते हैं । आप यह अन्न-जल ले कर हमे कृतार्थ और पावन करिये।

बन्धुओ ! थोड़े समय पहले ये ही ब्राह्मण-अध्यापक जाति के अभिमान मे छके हुए इस प्रकार बोले थे कि यह अन्न जल भले ही नष्ट हो जाय परन्तु तुम्हे (मुनि को) नहीं देंगे । जाति और विद्या के मिथ्या अभिमान ने उन्हे बुरी तरह ग्रसित कर रखा था, उनके विवेक पर अभिमान का पर्दा गिरा हुआ था इसलिए उनके मुख से वैसे शब्द निकले थे । भाइयो ! अध्यापक या गुरू का काम बडा उत्तरदायित्व पूर्ण है । बालक-बालिकाओ मे, शिष्यो में अच्छे बुरे संस्कार, आचार और विचार डालने का गुरूतर कार्य इन्ही का है । इस गुरूतर कार्य के कारण ही तो गुरू कहे जाते हैं । गुरू बनना सहज नहीं है । भाइयो ! ज्ञान की परम्परा त्याग से चलती है, भोग से नहीं । भोगी गुरू किसी को सच्चा ज्ञान देने में उतने सफल नहीं हो सकते हैं जितने योगी गुरु ।

मतलब यह हुआ कि सच्चे योगी मुनि ने उन अध्यापकों के नेत्र खोल दिये । उनका जाति-अभिमान जाता रहा और वे मुनि से प्रार्थना करते हैं कि आप हमारा यह अन्न-जल ग्रहण कर हमें कृतार्थ कीजिए ।

आजकल कितनेक लोग मुनियों से प्रार्थना तो करते हैं कि महाराज हमारे घर को पवित्र कीजिए परन्तु जब मुनि उनके घर जाते हैं तो उन्हे चौके से दूर ही खड़ा रखते हैं । यह जातिवाद उनमें भी घर किया हुआ है । परन्तु लानत है उनकी इस मिथ्या भ्रमणा को । साधु जो जंगम तीर्थ हैं उनसे क्या भला चौका

अपवित्र हो सकता है ? अरे वे तो महा पवित्र विभूति होते है। उनके पदार्पण से तो अपवित्र भी पवित्र बन जाता है। बन्धुओ! श्रावक वर्ग को इस बात का पूरा २ विवेक रखना चाहिए।

जींद ग्राम की घटना भी इस प्रसंग से याद आ गई सो सुना देता हूँ। एक श्रावक साधुजी को आग्रह पूर्वक अपने घर पर गोचरी के लिए ले गया। श्राद्धों के दिन थे। भोजन सामग्री तैयार थी। महाराज को आये देख कर श्राविका बोली- पधारो महाराज। हे हे! परन्तु अभी तो ब्राह्मण देवता को भोग नहीं लगाया है। श्रावक बोला— इन से बढ़ कर और कौन देवता हो सकते है ? उसने मुनि को आहार-दान दिया। मुनि चले गये। वह बाई अपने पति से बोली कि— पितरों को भोग नही लगाया है इसलिए पितर नाराज हो जाएंगे और आज जरूर कुछ अनिष्ट होगा। स्त्रियो में मिथ्या मान्यताएं ज्यादा घर किये हुए होती है। संयोग से वह बाई ऊपर चढ़ाव पर चढ़ती हुई फिसल पड़ी और उसे चोट लग गई। वह बड़बडा उठी— देखो, मैने कहा था न कि पितर नाराज हो जाएगे सो वे सचमुच नाराज हो गये और यह अनिष्ट हुआ। वह भाई बोला— अपराध तो मैंने किया और पितरो ने उसका दण्ड तुझे दिया। मुझ पर पितरो का जोर क्यो नहीं चला ? वह बोली— मै गिर पड़ी सो घर में नुक्सान हुआ यह पितरो का दण्ड ही है। -

वह भाई बोला:—पगली! इसे उस दान का पुण्य फल समझ जो तू गिरने पर भी बच गई नहीं तो ऐसी गिरती कि न जाने नई माँ का दूध पीना पड़ता! दान के प्रभाव से ही तेरी रक्षा हुई।

उक्त घटना यह बताती है कि कतिपय श्रावक श्राविकाओं में भी मिथ्यात्व का—देवी देवताओं की पूजा का-अन्ध विश्वास का अंश देखा जाता है। यह उनके विवेक की कमी का द्योतक है ! भाइयो ! मिथ्यात्व छोड़ो और सच्चे देव-गुरु से सम्बन्ध जोड़ो।

हाँ तो, उन ब्राह्मण अध्यापकों ने हरिकेशी मुनि से आहार लेने की प्रार्थना की। मुनि ने उसे स्वीकार कर लिया क्योंकि सच्चे मुनि को मानापमान की चिन्ता नहीं होती उन्हें पारणा करना ही था अतः उन्होंने उनका दिया हुआ दान स्वीकार कर लिया। उनके दान लेते ही आकाश से गन्धोदक की वर्षा हुई, फूलों की वर्षा हुई, सुगन्धि चीजों की वृष्टि हुई रत्नों की वृष्टि हुई और देवताओं ने दुन्दुभि बजाकर अहो दान महादान की उद्घोषणा की। यह महिमा किसकी ? जाति की ? वर्ण की ? कुल की ? विद्याभिमान की ? नहीं नहीं। यह महिमा है त्याग की, तप की संयम की और गुणों की। कहा है:—

गुणा पूजा-स्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः

गुणों की पूजा होती है, वेश, वय या जाति पांति की नहीं एक उर्दू के कवि ने कहा है:—

सीरत के हम गुलाम हैं सूरत हुई तो क्या ?
सुरखो सफेद मिट्टी की मूरत हुई तो क्या ?

इसके पश्चात् हरिकेशी मुनि ने उन अध्यापकों को उपदेश दिया कि जो तुम लोग बाह्य शुद्धि के निमित्त जल अग्नि आदि जीवों के पीछे हाथ धोकर पडे हो उस बाह्य शुद्धि का महापुरुषो की दृष्टि कोई विशेष महत्त्व नहीं है। आभ्यन्तर शुद्धि का ध्यान रखना चाहिए। आत्मा की शुद्धि ही वास्तविक शुद्धि है। शरीर की शुद्धि से ही काम नहीं चलने वाला है। आत्मा का मैल शरीर को धोने से नहीं जाता । उसके लिए तो शान्ति के सरोवर मे स्नान करने की आवश्यकता है।

पहले शांति-सरोवर में नहाया करो जी पहले शांति० ॥
शांति जैसो दान न कोई भावे बोरी पर बोरी लुटाया करो।
शांति जैसा तप न कोई भावे धूनी पर धूनी रमाया करोजी ॥१॥
शांति जैसा जाप न कोई भावे माला पै माला फिराया करो।
शांति जैसा तीर्थ न कोई भावे गोते पै गोते लगाया करो ॥२॥

अगर आप शुद्धि चाहते हैं, पाप को धोना चाहते है और जीवन को ऊँचा उठाना चाहते है तो शांति और क्षमा के सरोवर मे अवगाहन और स्नान कीजिए। शांति और क्षमा के समान दूसरा कोई तप नही, जप नहीं। कहा है— नास्ति क्षमातुल्यं तपः क्षमा से बढ़ कर दूसरा कोई तप नहीं है। और भी कहा है—

करोड़ वर्ष तक तप तपे एक सहे जो गाल।
क्षमा बराबर तप नहीं जो मेटे मन की जाल ॥

तपस्वी पंचाग्नि तप तप कर अपने शरीर को शोषित और कृश कर डालते हैं, कांटों पर शयन करते हैं, वृक्ष पर लटक जाते है, नानाविध तरीकों से भयंकर कायक्लेश सहन करते हैं, परन्तु इतना करने पर भी यदि उसमे कषायाग्नि भभक रही है तो वह सारा तप, तप न रह कर काया-क्लेश मात्र हो जाता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति शान्त चित्त से दूसरे के द्वारा दी हुई गाली को समभाव से सहन करता है, वह उस तपस्वी से बड़ा तपस्वी है। दुर्वचनो को सहन करना साधारण बात नहीं है। रण मैदान मे लोहे के बाणों को सहन करने वाले व्यक्ति बहुत हैं परन्तु वचन-बाणों को समभाव से सहन करने वाले व्यक्ति विरल ही है। शास्त्रकार कहते हैः—

सक्का सहेउं आसाइ कंटया,
अओमया उच्छहया नरेणं।
अणासए जो उ सहेज्ज कंटए,
वईमए कण्णसरे स पुज्जो ॥

किसी आशा से बँधा हुआ व्यक्ति लोहे के बाण उत्साह पूर्वक सहन कर लेता है परन्तु जो व्यक्ति वचनरूपी बाणों को बिना किसी आशा के बिना स्वार्थ के— प्रतीकार की शक्ति होने पर भी समभाव पूर्वक सहन कर लेता है वह पूज्य है।

शस्त्र के घावों को सहज ही सहन किया जा सकता है परन्तु वचन के घावों को सहन करना बड़ा कठिन है। शस्त्र के

घाव तो थोड़े समय मे रूझ जाते है परन्तु वचन के घाव जन्म पर्यन्त पीडा देते रहते हैं। अतः वचन बाणों को सहन करना अधिक शक्ति-शालियो का काम है। वाणो को सहन करने वाले की अपेक्षा वचन-बाण को सहने वाला अधिक शूरवीर है। क्षमा करना कायरो का काम नही वीरो का काम है। जो कायर है वे क्षमा नही कर सकते। जो शूरवीर हैं वे ही क्षमा कर सकते है। क्षमा करना वीरो का धर्म है, वीरो का भूषण है। तात्पर्य यह है कि क्षमा करना बड़ा भारी तप है और क्षमावान् तपस्वी बहुत विरल है।

एक गांव के बाहर एक बाबाजी आये। उन्होंने तालाब के किनारे अपना अड्डा जमाया। लोग उनके पास आने-जाने लगे। कुछ युवक भी उनके पास गये और शिष्टाचार का पालन करने के बाद उनका शुभ नाम पूछा। बाबाजी ने कहा--मुझे शीतलनाथ कहते है। युवको ने सोचा बाबाजी शीतलनाथ है तो जरा देखें कि इनमे कितनी शीतलता है। वे बोले—महाराजजी ! हमारा बड़ा अहोभाग्य है कि आपके दर्शन हुए। आपका जैसा नाम है वैसे ही गुण भी है। कल फिर आपके दर्शन करेंगे। युवक ऐसा कहकर चले गये। युवको को बाबाजी की कसौटी करनी थी। इसलिए वे दूसरे दिन और गये और महाराज को दण्डवत् कर बोले—महाराजजी ! कल आपके दर्शन किये थे। आपका शुभ नाम भी पूछा था परन्तु हमे आपका शुभ नाम याद नहीं रहा। कृपा कर फिर से बतलाने का कष्ट कीजिए।

बाबाजी कुछ जोर से बोले—क्यों भाई कल कहा था न कि शीतलनाथ।

युवक बोले—हाँ महाराज, आपने फरमाया तो था परन्तु हम मंद बुद्धि होकरे भूल गये। ऐसा कहकर वे चले गये।

तीसरे दिन वे युवक फिर बाबाजी के पास पहुंचे। दण्डवत् कर बोले कि—महाराज ! आपकी सब बातें याद रहती है परन्तु हुजूर का नाम याद नहीं रहता। हम तो फिर भी भूल गये।

बाबाजी का दिमाग कुछ विशेष गरम हो गया। टेम्प्रेचर चढ़ गया। वे बोले—दो बार बता दिया न कि शीतलनाथ।

युवक बोले—महाराज ! स्मरण शक्ति बड़ी कमजोर हो गई है। अब जरूर याद रखेंगे।

चौथे दिन वे फिर पहुँचे। उन्हें तो शीतलता की कसौटी करनी थी। उनने फिर बाबाजी से नाम पूछा। बाबाजी का पारा एकदम चढ़ गया। वे चिमटा उठा कर बोले— कल कहा था न शीतलनाथ। इतना भी याद नहीं रहता।

युवक बोले— हाँ, महाराज अब बराबर याद रहेगा। अब कभी नहीं भूलेंगे।

अग्नि केरा कोथला नाम दिया शीतल।
बाहर सोना सौ टंच का अन्दर कोरा पीतल ॥

भाइयो ! क्षमा करना, दुर्वचनों को सुनकर भी दिमाग का संतुलन न खोना, उन्हें समभाव पूर्वक सहन करना बड़ा भारी तप है। आई हुई गाली को मिश्री की तरह घोलकर पी जाना चाहिए। इसमें ही महत्ता है, बड़प्पन है और वास्तविक तपश्चर्या है। क्षमा करना तपस्वियों का भूषण है। कहा है:—

कोकिलानां स्वरं रूपं विद्यारूपं कुरूपिणां ।
क्षमा रूपं तपस्विनां नारी-रूपं पतिव्रता ॥

शांति रूपी तप के तेज से शोभायमान हरिकेशी मुनि उन अध्यापकों और छात्रों को उपदेश देते हैं कि पानी द्वारा नहाने से आत्मकल्याण नहीं हो सकता। बाह्य शुद्धि के द्वारा आत्मा की शुद्धि नहीं हो सकती। आत्मा के शोधन के लिए तो आभ्यन्तर स्नान की आवश्यकता है। इस पर वे ब्राह्मण अध्यापक और छात्र प्रश्न करते हैं कि:—

के ते हरए के य ते सन्तितित्थे
कहिं सिणाओ व रयं जहासि

आइक्ख णे संजय ! जक्खपूइया
इच्छामो नाउं भवओ सगासे ।

हे महामुने ! हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि वह कौनसा सरोवर है जिसमें नहाने से पाप-मैल की शुद्धि होती है। कृपया हमें बतलाइये। हरिकेशी मुनि कहते हैं:—

धम्मे हरए बम्भे सन्तितित्थे
अणाविले अत्त-पसन्नलेस्से
जहिं सिणाओ विमलो विसुद्धो
सुसीइभूओ पजहामि दोसं

धर्म रूपी सरोवर है, शांति रूपी तीर्थ (घाट) है, ब्रह्मचर्य-रूपी पानी है। इसमे जो अवगाहन करते है वे मल रहित हो जाते हैं। वे विशुद्ध और विमल हो जाते है। उनका पाप रूपी संताप दूर हो जाता है। वे शीतीभूत और शुचिभूत हो जाते हैं। इसमें जो स्नान करते है वे सदा के लिए निर्मल, निस्ताप और निष्पाप बन जाते है। यही स्नान प्रशंसनीय है। यह वास्तविक शौच है।

यह पवित्रता, यह शौच, यह स्नातकता धर्माचरण से आती है। धर्म मंगल ही इसका मूल है। हरिकेशी मुनि चाण्डाल कुल में उत्पन्न होकर भी देव पूज्य बने, यह धर्म मंगल का ही पुण्य प्रभाव है। यह धर्म मंगल ही अरिहत मंगल का जन्मदाता है, यही सिद्धमंगल का निर्माता है। इस दृष्टि से धर्म मंगल का महत्व अरिहंत और सिद्ध से भी अधिक है। धर्म ने अरिहंत और सिद्ध बनाये परन्तु अरिहन्त व सिद्ध ने धर्म को नहीं बनाया यह ठीक है कि अरिहन्तो ने धर्म का प्ररूपण किया, धर्म का मार्ग प्रदर्शित किया परन्तु उन्होने धर्म को बनाया नहीं है, बतलाया है। धर्म तो शाश्वत है, ध्रुव है, नित्य है। कहा है:—

एस धम्मे धुवे निच्चे सासए जिणदेसिये

तात्पर्य यह है कि धर्म मंगल का स्थान सर्वाधिक महत्व-पूर्ण है। यह मंगल ही सर्वोत्कृष्ट मंगल है।

यदि आप अपने पापो को धोना चाहते है, यदि आप आत्मीय युद्ध मे विजय पाना चाहते है तो इस मंगल चतुष्टयी का शरण लीजिये। मंगल पाठ की तोपें, मंगल के एटमबम जब चलते हैं तब पाप नष्ट हो जाते हैं। उन्हे टिकने के लिए अवकाश ही नहीं रहता। इसीलिए कहा है:—

एसो पंच णमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं॥

मंगल पाठ मे ही सारा तत्वज्ञान आ जाता है। इसके बाहर कुछ नही है। अतः इस मंगल पाठ का आश्रय लो। जो इसका आश्रय लेते है, जो अरिहन्त के गुण गाते है उन्हे ध्याते है वे अपना जीवन उन्नत बनाते हैं और इस लोक-परलोक मे आनंद ही आनंद पाते हैं।

आश्विन शु० ११ }
ता० २६-६-५२ }

प्रभु जागत है, तू सोवत है

उपस्थित देवियो तथा सज्जनो !

ल बतलाया गया था कि अर्हन्त प्रभु मंगलमय हैं। उनका नाम और काम महा महिमा-मय और मंगल-निलय है। अर्हन्त प्रभु की स्मृतियाँ, उनकी कृतियाँ और उनकी वृत्तियाँ मंगलमय ही हैं। अर्हन्त की कोई भी क्रिया, कोई भी चेष्टा, कोई भी प्रवृत्ति, कोई भी कृति और कोई भी वृत्ति ऐसी नहीं जो मंगलमय न हो। उनके तन का रोम-रोम, मन का अणु-अणु और आत्मा का एक-एक प्रदेश मंगलमय होता है। वह मंगल की मूर्ति होते है। दूसरे शब्दों में वे मूर्तिमान

मगल ही होते है। उन मंगलमय अर्हन्त प्रभु के गुण गाने से, उनका ध्यान करने से, भक्त भी मंगलमय बनता है।

प्रश्न हो सकता हैं कि अर्हन्त प्रभु की कृतियाँ और वृत्तियाँ अर्हन्त प्रभु से सम्बन्धित है, गुण गान करने वाले से सम्बन्धित नहीं है तो गुण गान करने वालो को अर्हन्त प्रभु की कृतियो और वृत्तियो से और उनकी स्मृतियो से क्या लाभ होता है?

इसमे कोई सन्देह नही कि सूर्य अपनी ज्योति का, अपने प्रकाश का अधिपति है। सूर्य की रश्मियाँ निस्संदेह सूर्य से संबन्धित है। किरणो का स्वामी सूर्य ही है। ऐसा होने पर भी सूर्य का प्रकाश केवल उसको ही प्रकाशित और आलोकित नहीं करता परन्तु विश्व को आलोक से भर देता है। किसी वस्तु का अधिपति होने का अर्थ यह नहीं होता कि वह खुद ही उसका लाभ उठाए, दूसरो को लाभ न लेने दे। वस्तुतः अधिपति वह है जो अपनी विभूति का, अपनी सम्पत्ति का लाभ दूसरो को भी पहुँचाए। जो व्यक्ति लखपति, करोडपति या विपुल धनराशि का अधिपति बन कर दूसरो को उसका लाभ नही पहुँचाता है तो वह सच्चा अधिपति ही नहीं है। वह तो सम्पत्ति का दास है। वह स्वार्थ परायण व्यक्ति सपत्ति का अधिपति नही होता, संपत्ति उसकी स्वामिनी होती है। वह तो उसका दास होता है।

जो सच्चे अर्थों में किसी वस्तु के अधिपति होते है, उसके दास नही होते है वे उदारता पूर्वक उस वस्तु का उपयोग दूसरों

को भी करने देते हैं। यदि वे ऐसा नही करते है तो समझना चाहिए कि वे उस वस्तु के अधिपति नही अपितु उस वस्तु के गुलाम है।

भाइयो ! प्रकृति की ओर जरा दृष्टिपात कीजिए। प्रकृति अपने वैभव की स्वामिनी है तो वह केवल आप ही अपने वैभव का भोग नहीं करती परन्तु दूसरो के लिए अपने वैभव का भंडार खोल देती है। चन्द्र, सूर्य पर्वत, नदियाँ वृक्ष, पानी, हवा आदि सब प्राकृतिक वस्तुओ को देख लीजिए। वे अपने २ गुणों के अधिपति होने पर भी उनका लाभ उन तक ही सीमित नहीं परंतु सब के लिए है। चन्द्र, सूर्य प्रकाश करते है परन्तु वे स्वयं ही प्रकाशित नही होते दूसरो को भी अपने प्रकाश से प्रकाशित, आलोकित और उद्योतित करते हैं। पहाड़ अपनी वनस्पतियो का, जड़ीबूटियो का अधिपत्ति है परन्तु वह अकेला ही उनका उपयोग नहीं करता। सब के उपयोग के लिए उसका वैभव खुला है। नदियाँ अपने पानी की स्वामिनी हैं परन्तु वे उस पानी को (अपने ही उपयोग में आए, दूसरो के नहीं, इस आशय से) कहीं बंद करके नही रखती हैं। वे अपने पानी को सब के उपयोग के लिए प्रवाहित करती रहती हैं। वृक्ष अपने फलों के स्वामी हैं परन्तु उन्होने यह अपना वैभव दूसरों के लिए खुला कर दिया है इससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि जो व्यक्ति सच्चे अर्थों में अपनी सम्पत्ति का स्वामी है वह उस सम्पत्ति को अपने ही उपयोग के लिए बन्द करके नहीं रखता है अपितु सब के उपयोग के लिए उसे

खुला रखता है। जो व्यक्ति ऐसा नहीं करता तो समझना चाहिए कि वह उस सम्पत्ति का अधिपति नही वरन् दास है।

आज के मानव ने जिस प्रकार का आधिपत्य अपनी सम्पत्ति पर जमा रखा है यदि प्रकृति अपने वैभव पर वैसा आधिपत्य जमा ले तो कहिए विश्व की क्या हालत हो! प्रकाश हवा, पानी आदि के बिना सर्वत्र त्राहि त्राहि मच जाय! परन्तु प्रकृति इतनी क्रूर नहीं है वह तो सब के उपयोग के लिए अपना वैभव लुटाती रहती है इसीलिए तो वह महान् है और सच्चे अर्थों मे अपने वैभव की स्वामिनी है।

हाँ, तो सूर्य अपनी किरणो का अधिपति है तदपि वह अपनी किरणो से न केवल आप ही प्रकाशित है अपितु सारी दुनियां को प्रकाश प्रदान करता है। इसी तरह अरिहन्त प्रभु यद्यपि अपने अनन्त चतुष्टय के, अपने केवल ज्ञान, केवल दर्शन अनन्त चारित्रादि आत्मिक विभूतियों के स्वयमेव अधिपति हैं तदपि उन विभूतियो से वे भी विभूषित है और दूसरे भव्यजनो को भी विभूषित करते हैं। सूर्य अपने मण्डल को भी प्रकाशित करता है और विश्व को भी। हाँ, यह अवश्य है कि वह प्रथम अपने आपको आलोकित करता है और बाद में विश्व को। इसी तरह अरिहन्त प्रभु ने अपनी विराट साधना के द्वारा जो सिद्धि प्राप्त की है उस पर प्रथम आधिपत्य उनका ही है। उस साधना का परिणाम अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन आदि सर्व प्रथम उन्हे ही प्राप्त होता है परन्तु वह उन तक ही सीमित नहीं रहता। सूर्य

अपने प्रकाश द्वारा पहले स्वयं प्रकाशित होता है और फिर दूसरो को भी आलोकित करता है। इसी तरह अरिहन्त प्रभु अपनी आत्मिक विभूतियो से प्रथम स्वयं विभूषित होते हैं और फिर उसका लाभ दूसरो को प्रदान करते हैं। इसलिए अरिहन्त प्रभु के गुण गान करने से भक्त को भी उनके गुणो का प्रसाद प्राप्त होता है।

शास्त्रकारो ने भगवान् को सूर्य की उपमा से उपमित किया है। लोगस्स के पाठ मे आप बोलते हैः—

आइच्चेसु अहियं पयासयरा

अर्हन्त प्रभु सूर्य से भी अधिक प्रकाश करने वाले है। सूर्य का प्रकाश बाह्य पदार्थों को प्रकाशित करता है परन्तु अरिहन्त प्रभु का केवल ज्ञान केवल दर्शन रूप प्रकाश बाहर के और भीतर के—सब तत्त्वो को आलोकित करता है। कोई ऐसा ज्ञेय पदार्थ इस विश्व में नही है जो अरिहन्त प्रभु के ज्ञान-दर्शन का विषय न होता हो। दुनिया का जर्रा जर्रा, अणु अणु उनके ज्ञान में स्पष्ट झलकता है।

सूर्य का प्रकाश वहीं जा सकता है जहां पर्दा आवरण न हो। आवरण आने पर उसका आलोक प्रतिहत हो जाता है। परन्तु अरिहन्त भगवान् का ज्ञान रूपी आलोक किसी भी आवरण से आवृत और प्रतिहत नहीं होता। वह सम्पूर्णतया निरावरण और अप्रतिहत होता है। उसकी गति और उसका विषय

लोकालोक व्यापी होता है। उसका सर्वत्र संचार होता है। कोई नदी या पहाड़ उसका बाधक नहीं हो सकता।

ज्ञानावरणीय कर्म ही ज्ञान में बाधक होता है। जब वह बाधक दूर हो जाता है तब और कोई चीज बाधक नहीं रहती। मतलब यह है कि जीव के अपने कर्म ही उसके बाधक होते है दूसरा कोई बाधक नहीं होता। भगवान् का ज्ञानावरणीय कर्म सर्वथा क्षीण हो गया होता है इसलिए उनका ज्ञान सब प्रकार की बाधाओ से अबाधित होता है और अप्रतिहत होता है। सूर्य के प्रकाश से अरिहन्त प्रभु के ज्ञान प्रकाश की इतनी अधिक महत्ता है। इसीलिए कहा गया है कि अर्हन्त प्रभु आदित्य से भी अधिक प्रकाश करने वाले हैं।

यहाँ सूर्य को 'आदित्य' कहा गया है। इसका कारण यह है कि वह व्यवहार नय की अपेक्षा से काल की आदि करने वाला है। समय से लेकर पुद्गल-परावर्त्तन तक का काल-विभाग सूर्य की गति पर आधारित है। व्यवहार नय की अपेक्षा काल-विभाग अढ़ाई द्वीप पर्यन्त है। क्योकि यह काल-विभाग सूर्य की गति के आधार से माना जाता है। ढ़ाई द्वीप के बाहर के सूर्य चन्द्र स्थिर हैं, गति-शील नहीं। गति-शील सूर्य चन्द्र अढ़ाई द्वीप तक है इसलिए वहीं तक समय, आवलिका, घड़ी, मुहूर्त्त, दिन रात, पक्ष, मास, वर्ष आदि काल विभाग की व्यवस्था है। जम्बूद्वीप का काल विभाग जम्बूद्वीप के सूर्य चन्द्र की गति पर निर्धारित है और धातकी खंड का काल विभाग धातकी खंड के सूर्य

चन्द्र की गति पर अवलम्बित है। तात्पर्य यह है कि व्यावहारिक काल की आदि करने वाला सूर्य है इसलिए वह 'आदित्य' कहलाता है। निश्चय काल के सम्बन्ध मे दो प्रकार की धारणाएँ हैं। कुछ आचार्य काल को औपचारिक द्रव्य मानते है वास्तविक द्रव्य नहीं। कोई २ आचार्य काल की गणना द्रव्य में नहीं करते। यह एक स्वतंत्र विषय है। यहाँ इतना ही प्रयोजन है कि व्यवहार काल की आदि करने वाला होने से सूर्य 'आदित्य' कहा जाता है। अर्हन्त प्रभु का केवल ज्ञान रूपी प्रकाश सूर्य के प्रकाश से भी अनन्त गुण अधिक होता है इसलिए उनकी स्तुति में कहा गया है:--

आइच्चेसु अहियं पयासयरा

कुछ स्थूल बुद्धि वाले भावुक यह समझ बठे हैं कि भगवान् का शरीर सूर्य से अधिक प्रकाश करने वाला है। जैसे सूर्य द्रव्य अन्धकार को नष्ट कर देता है वैसे ही भगवान् का शरीर भी द्रव्य अन्धकार को दूर कर प्रकाश कर देता है, यह मान्यता संगत नहीं है। यदि ऐसा होता तो भगवान् जहाँ विराजमान होते वहां रात्रि होनी ही नहीं चाहिए थी। परन्तु ऐसा नहीं हुआ है। सूर्य से अधिक प्रकाश करने वाले यह विशेषण देने का अर्थ इतना ही है कि सूर्य का प्रकाश मर्यादित क्षेत्र को प्रकाशित करता है और अरिहंत भगवान् का केवल ज्ञान-केवल दर्शन रूप प्रकाश सकल लोकालोक को प्रकाशित करने वाला होता है अतः उन्हें "आइच्चेसु अहियं पयासयरा" कहा गया है।

हाँ तो प्रसंग यह चल रहा है कि भगवान् के गुणों के अधिपति भगवान् है तो भक्तों को उनके गुण-गान से क्या लाभ होता है ? इस प्रश्न का समाधान सूर्य के दृष्टान्त द्वारा समझाया गया है। सूर्य प्रकाश का अधिपति होते हुए भी उससे दूसरे पदार्थ भी प्रकाशित होते है। इसी तरह भगवान् के गुणों का स्वामित्व भगवान् का ही है तदपि अनेक जीव उनके गुण-प्रकाश से अपने को भी प्रकाशित कर लेते हैं। भगवान् के गुणों का प्रज्वलित दीपक दूसरे अनेको बुझे हुए दीपको को प्रज्वलित करने वाला होता है। उस प्रज्वलित दीपक से प्रकाश लेकर दूसरे दीप भी ज्वलित हो उठते है। अपने बुझे हुए दीप को प्रज्वलित करने के लिए ही अरिहन्त प्रभु के प्रज्वलित दीप का आश्रय लिया जाता है। भगवद् भक्ति का यही तो उद्देश्य है। भगवान् से प्रेरणा प्राप्त कर भक्त भी भगवान् बन जाता है। प्रभु-स्तुति का, प्रभु के ध्यान और गुण गान करने का यही उद्देश्य है कि प्रभु के प्रकाश से भक्त भी अपने जीवन को प्रकाशित करे।

भगवान् के आध्यात्मिक प्रकाश से अन्य संसारी जीव भी लाभ उठा सकते हैं। यह सत्य है परन्तु वे ही आत्माएँ लाभ ले सकती हैं जिनके हृदय-नेत्र खुले हुए है और निर्मल है। सूर्य के प्रकाश से अन्य जीव भी लाभ ल सकते है परन्तु वे ही सूर्य के प्रकाश का लाभ ले सकते हैं जिनके नेत्र है। नेत्रहीन-अन्धा व्यक्ति सूर्य की रोशनी का लाभ नहीं ले सकता। नेत्र होने पर भी यदि कोई नेत्र बन्द रखता है तो उसे भी सूर्य के प्रकाश का

लाभ नहीं मिल सकता। इसी तरह भगवान् के गुण सबको आत्मिक प्रकाश प्रदान कर सकते हैं परन्तु उससे वही लाभान्वित होता है जो अपने हृदय रूपी नेत्रो को खुला रखता है। प्रभुदर्शन के लिए जो अपनी आंखें खुली रखता है उसको प्रभु-गुण का प्रकाश मिलता ही है। परन्तु उल्लू की तरह जो अपनी आंखें बन्द रखता है उसे प्रकाश का आनन्द नहीं आ सकता।

मान लीजिए, किसी मनुष्य की आंखो में दर्द है, पीड़ा है, शूल चलती है, उसे चैन नहीं पडता। जहाँ हरियाली खिली हुई हो. सब्जियाँ उग रही हो ऐसे हरे भरे स्थान में जाने से उसे शांति मिलती है, शीतलता मिलती है, व्यथा कम होती है। परन्तु उस हरे-भरे क्षेत्र में जाने पर भी यदि वह आंखे मींच लेता है तो उसे वह शांति नहीं मिल सकती, वह तरावट प्राप्त नहीं हो सकती, वह तरो-ताजगी हांसिल नहीं हो सकती। आंखें खोल कर जो उस हरी-भरी घास पर अपनी दृष्टि जमाएगा तो उसे अवश्य शीतलता, शांति और चैन मिलेगा।

यह शीतलता, शांति और चैन उसी हालत में प्राप्त हो सकेगा जब जिस ओर दृष्टि लगाई जा रही है वह घास भी हरा भरा हो। यदि वह घास सूखा है, निष्प्राण है, बेजान है, जिसमें जीवन नहीं है, जिसमें स्वयं तरावट नहीं है वह दूसरों को तरावट नहीं दे सकता है। जो कुआ स्वयं पानी से खाली है वह दूसरे की प्यास कैसे बुझा सकता है? प्यासा व्यक्ति खाली कुए के पास पानी की आशा से नहीं जाता। वह तो उसी कुए के पास

जाएगा जिसमें पानी है। जो दीपक बुझा हुआ है वह दूसरो को प्रकाश कैसे दे सकता है? जो स्वयं दिवालिया है वह दूसरे के दिवाले को नहीं रोक सकता है। इसी तरह गुणहीन, जीवन-हीन, बेजान, बेभान और निष्प्राण कल्पित भगवान् से वह आत्मिक शांति, वह रूहानी तरो-ताजगी नहीं मिल सकती जो आत्मिक विभूतियो से सम्पन्न, अठारह दोष रहित, बारह गुण सहित चौतीस अतिशय और पैंतीस वाणी के गुणो से विभूषित साक्षात् अर्हन्त भगवान् के गुणगान और ध्यान से प्राप्त होती है। जो घास सूखी हुई है, जीवन-हीन है उसे चाहे घंटो तक देखा जाय दिन रात उसका दर्शन किया जाय तो भी उससे नेत्रो को शांति नही मिल सकती है? वही घास उन नेत्रो को-दुःख से संतप्त आंखो को शांति दे सकती है जिसमें जीवन है, तरो-ताजगी और तरावट है। उसे ही देखने से आंखो को शांति मिल सकती है क्योकि उसमें तरावट है। शांति के परमाणु देखने वाले मे हैं या दिखने वाले मे है? वह तरावट किसमे है? उस दिखने वाली हरी-भरी घास में। यद्यपि यह तरावट का गुण घास मे है, उस तरावट का आधिपत्य घास का है तदपि वह देखने वाले को तरो-ताजगी देता है। दिखने वाला भले दूर हो परन्तु उसमे शांति देने के गुण है तो वह दृष्टि-संबन्ध जोड़ने वाले को शांति देगा ही। जिसमे शांति देने का गुण ही नही उसे दिन भर देखते रहने पर भी शांति नहीं मिल सकती।

तात्पर्य यह है कि जिसमे यह तरो-ताज़गी देने का गुण है वह भी जीवन-वान् होना चाहिए और देखने वाले मे भी चेतन

होना चाहिए। भगवान् हम से दूर होते हुए भी जब हमारी दृष्टि उनकी ओर लग जाती है तो उनसे हमे अवश्य शान्ति मिलती है। भगवान को देखने के लिए ये चर्मचक्षु काम आने वाले नहीं है। उनके दर्शन के लिए तो हृदय-नेत्रों को खोलने की आवश्यकता है।

सब्जी भी साकार है और आंखे भी साकार हैं। यहाँ साकार से साकार को देखने पर शान्ति मिलती है। उधर परमात्मा भी निराकार है और आत्मा भी अपने मूल रूप मे निराकार है। यह जो लाल-पीला-सफेद, काला गौरा दिखाई देता है वह कुछ और है और आत्मा कुछ और है। वह इन सब से परे है। वह निराकार है। न वह लम्बा है, न वह छोटा है, न गोल है न चतुष्कोण है। उसका न कोई आकार है और न कोई प्रकार है। वह निराकार है और अनिर्वचनीय है। साकार साकार को शान्ति दे सकता है तो निराकार प्रभु निराकार आत्मा को शान्ति क्यो नही दे सकता है? अवश्य दे सकता है परन्तु इसके लिए जरूरी है कि हम हमारी आंखें खुली रखें। यह नहीं हो सकता कि प्रभु जागता हो और भक्त सोता हो। भक्त जागता हो और प्रभु सोता हो यह भी नहीं हो सकता।

पद-विहार करते २ हम एक गाँव में ठहरे थे। रात्रि के ८-८॥ बजे मंदिर में घंटे बज रहे थे। मैंने पूछा—भाई यह क्या किया जा रहा है? उत्तर मिला कि भगवान् को सुला रहे हैं। मैं चक्कर में पड़ गया। घंटे बजा बजाकर भगवान् को सुलाने

की बात मेरी समझ मे नहीं आई। वैसे भी किसी को सुलाना होता है तो आवाज शोरगुल बंद कर दिया जाता है परन्तु यहाँ तो उल्टी ही बात ! घंटे घड़ी बजा कर सुलाना तो अजीब-सा लगता है। दूसरा विचार मुझे यह हुआ कि भगवान् क्या कोई छोटा छोरा है जिसे थपकियाँ देकर सुलाया जा रहा है। क्या भगवान को इतना होश नही कि खुद जाग जाय और खुद सो जाय तीसरी बात यह भी दिमाग को अटपटी लगी कि भगवान को सुलावे तो भी घटा घड़ी बजावे और जगावे तो घटा घंटी बजावे। खैर, इन छोटी-मोटी बातो को जाने दीजिए। मूल बात पर विचार करना है कि क्या भगवान भी सोता है ?

बन्धुओ ! सोना-निद्रा लेना अल्पज्ञ का काम है। जो सोता है वह अल्पज्ञ है। दिमाग और शरीर जब काम करते करते थक जाता है तो आराम के लिए सोना पड़ता है। यह बात सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु के नही होती। वे थकते ही नही है अर्हन्त प्रभु अठारह दोषो से रहित होते है। उन अठारह दोषो मे निद्रा भी है। भगवान ने निद्रा पर विजय प्राप्त करली होती है। निद्रा आना दर्शनावरणीय कर्म का फल है। भगवान ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार कर्मों का समूल विनाश कर चुके होते है अतः वे निद्रा रहित होते हैं। शराब पिया जाय तो नशा आता है। न पिया जाय तो नही आता है। इसी तरह दर्शनावरणीयकर्म होतो नींद आती है। न हो तो नही आती है। निद्रा की अवस्था मे

उपयोग काम नहीं करता है। उस अवस्था मे थोड़ी देर के लिए मृत-वत होना पड़ता है —

देख्यो रे चेला ! बिना मौत मुआ !
देख्यो गुरूजी ! बिना मौत मुआ !
निद्रा गुरूजी ! बिना मौत मुआ !

यह अवस्था अर्हन्त प्रभु में नही होती। साकार परमात्मा मे भी निद्रा नही होती तो निराकार परमात्मा मे नींद का सद्भाव कैसे हो सकता है ?

तात्पर्य यह है कि भगवान् कभी सोते नहीं। वे तो सदा जागते ही है। अब तो भक्त को जागने की आवश्यकता है। भगवान् भी जागें और भक्त भी जागें तो ही भक्ति का आनंद प्राप्त होता है।

सांसारिक क्षेत्र के प्रेम मे भी दोनो प्रेमियो का जागना जरूरी है। दोनों के जागे बिना प्रेम का आनंद नहीं आता। एक सोता हो और दूसरा जागता हो तो प्रेम का मजा नहीं आता। आध्यात्मिक प्रेम के क्षेत्र में भी दोनों प्रेमियों का जागना नितान्त आवश्यक है। भगवान तो सदा जागृत ही रहते हैं। सच्चिदानन्द मय परमात्मा तो जागते ही रहते हैं। आवश्यकता है भक्त के जागने की। भगवान् जागता हो और भक्त सोता हो, यह प्रीति की रीति नहीं है। कहा:—

यह प्रीति करन की रीति नहीं ।
प्रभु जागत है तू सोवत है ॥
उठ जाग मुसाफ़िर भोर भई ।
अब रैन कहा जो सोवत है ॥
टुक नींद से अंखिया खोल जरा ।
अरु अपने प्रभु से नेह लगा ॥
हाँ, दिल अपने अन्दर तू ज्योति जगा ।
प्रभु जागत है तू सोवत है ॥

उठो ! विहान हो गया है । भानु उदति हो चुका है । अब आँखें खोलो । निद्रा लेने का समय अब नहीं रहा है । तेरा प्रभु जागता है और तू सोता है । इस तरह काम नहीं चलेगा । अगर उसे पाना है तो अपनी आंखें खोलो । मोहब्बत करने का तरीका यह कदापि नहीं कि एक सोता रहे और दूसरा जागता रहे । जो प्रभु के रसिक हैं, प्यारे है, जो प्रभु की गुणावलियां दोहराते हैं उन्हे नींद ही नहीं आनी चाहिए । कई लोग कहते हैं कि हम प्रभु का गुणगान करना चाहते हैं परन्तु प्रातः नींद नहीं खुलती । यह कथन इस बात को प्रकट करता है कि उनमें प्रभु के प्रति प्रेम ही जागृत नहीं हुआ है । प्रेमी की अवस्था तो ऐसी होती है कि वह नींद लेना चाहता है तो भी उसे नींद नहीं आती । क्योंकि कहा है:—

जो विरही हैं राम के उन्हें न आती नींद।
शस्त्र लगा है प्रेम का गया कलेजा बींध॥

प्रभु-प्रेम का शस्त्र जिसे लग गया हो उसे नींद नहीं आती। विरही जनों को नींद नहीं आती। यदि प्रभु के प्रति प्रेम पैदा हो गया है तो उसे पाये बिना भक्त को चैन ही नहीं पड़ता। तो नींद कहाँ से आ सकती है?

प्रेम पथ पावक नी ज्वाला

प्रेम का मार्ग अग्नि की ज्वाला के समान है। अग्नि की ज्वाला में पड़ने पर किसी को नींद आ सकती है? नहीं। उठो नींद खोलो और प्रभु से प्रीति जोड़ो। बहुत से लोगों ने प्रेम को मेरे नाम को बदनाम कर दिया है। यह मुझे कैसे सह्य हो सकता है? उन्होंने मोह को ही प्रेम समझ रखा है। बन्धुओ! मोह और प्रेम दोनों अलग २ हैं। दोनों का रूप सर्वथा भिन्न है। दोनों में जमीन आसमान का भेद है।

प्रेम अमृत है, मोह विष है।
प्रेम स्वर्ग है, मोह नरक है।
प्रेम पूर्णिमा का प्रकाश है, तो मोह अमावस्या का अन्धकार है
प्रेम सोना है, मोह पीतल है।
प्रेम गाय का दूध है, मोह आक का दूध है।

प्रेम में उत्थान है, मोह में पतन है।
प्रेम में भक्ति है, मोह में आसक्ति है।
प्रेम में परमार्थ है, मोह में स्वार्थ है।
प्रेम आत्मा की विभूति है, मोह आत्मा के लिए विपत्ति है।

मोटे तौर पर प्रेम और मोह के भेद की कसौटी स्वार्थ और परमार्थ है अथवा आसक्ति और भक्ति है। मोह स्वार्थ और आसक्ति को लिए हुए होता है और प्रेम परमार्थ और भक्ति को लिए रहता है।

जिसके हृदय मे प्रेम का सागर लहराता है वहाँ भक्ति और परमार्थ की तरगे तरंगित होती हैं। जहाँ प्रेम है वहाँ प्रभु के प्रति भक्ति और दीन-दुखियों के लिए दया का स्रोत फूट पड़ता है। जहाँ मोह है वहाँ स्वार्थ आंखों के आगे नाचता है। मोहान्ध व्यक्ति नेकी बदी का, न्याय अन्याय का, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का, धर्म-अधर्म का ध्यान नहीं रखता हुआ एकान्त अपना ही मतलब सिद्ध करता है। येन-केन-प्रकारेण वह अपना स्वार्थ सिद्ध करने मे मशगूल रहता है। अपने छोटे से स्वार्थ के कारण वह दूसरो का बड़े से बडा अहित कर डालता है। वह अपने पोषण के लिए दूसरो का शोषण कर डालता है। वह दूसरे के हित का विचार नही करता हुआ अपना ही विचार करता है।

अन्धा बांटे सिरनी.........................।

यह मोह की परिणति है।

इसके विपरीत जिसके हृदय मे प्रेम भाव है वह स्वार्थ की बलि देकर परमार्थ का साधन करता है। उसकी दृष्टि में वह आप गौण होता है और दूसरो के हित को अधिक महत्त्व प्रदान करता है। दूसरो की भलाई के लिए, दूसरों का दुःख दूर करने के लिए वह अपने को कुर्बान कर देता है, जी जान लड़ा देता है। मतलब यह है कि प्रेम मे अपना सर्वस्व अर्पण कर देना होता है और मोह मे सब कुछ हड़प लेना होता है। प्रेमी अपना सर्वस्व लुटा देता है और मोही दूसरे का भी येन-केन प्रकारेण छीन लेना चाहता है। यह है प्रेम और मोह का अन्तर ! विशुद्ध प्रेम जीवन को प्रशस्त कर उन्नत बनाने वाला है और मोह जीवन को कलुषित बना कर पतन की ओर ले जाने वाला है।

शास्त्रकार ने प्रेमी की प्रशंसा की है। अट्ठमींजा पेमाणुरागरत्ते अर्थात् उन श्रावकों के रग रग में धर्म का प्रेम कूट कूट कर भरा था। यह वर्णन करके शास्त्रकार ने प्रेम की सराहना की है।

प्रेम की आत्मार्पणता को प्रगट करने के लिए एक स्थूल उदाहरण देना समुचित प्रतीत होता है।

किसी जंगल में एक दिन हिरन-हिरनी का जोड़ा निवास करता था। दोनो में बड़ा प्रेम था। वे एक दूसरे को प्राणों से भी अधिक समझते थे। किसी समय ऐसा संयोग बना कि जंगल के सरोवर और सोत सूख गये। दोनो प्राणी प्यास से पीड़ित हैं। जल की

तलाश में घूम रहे हैं परन्तु पानी दृष्टिगोचर नहीं हुआ। देवयोग से एक गड्ढे में प्रभात के तारे की तरह थोड़ा सा जल दिखाई दिया वह पानी इतना ही था कि उससे एक को ही थोड़ी सी तृप्ति हो सकती थी। प्राणी दो हैं और पानी थोडा है।

हिरन हिरनी से कहता है कि मै तो पुरूप हूँ। कष्ट सहन कर सकता हूँ तुम नारी जाति हो, कोमल अंग वाली हो, तुम यह जल पीकर अपनी तृषा को बुझा लो।

हिरनी बोलती है— प्राणनाथ ! आप यह क्या कह रहे हैं ? आप प्यासे रहें और मै पानी पीकर प्यास बुझाऊँ, यह अन-होनी बात कभी नहीं होती है। आप कष्ट सहे और मै चैन उडाऊँ यह मुझसे नहीं बनने का है। नारी का यह धर्म नही है। दोनों मे घना प्रेम था। वे एक दूसरे से जल पीने का आग्रह करते है। किन्तु उनमे से कोई भी अकेला जल पीने के लिए तय्यार न हुआ फल यह हुआ कि प्यास के मारे दोनो के प्राण पंखेरु उड गये।

ये दो तिर्यन्च प्राणी मर कर भी प्रेम का आदर्श छोड़ गये। उन प्रेमियों ने प्रेम की साधना के लिये मर जाना भी पसंद किया। यदि उनमें प्रेम न होकर मोह होता तो दोनो प्राणो की नोबत आने पर अपने २ को बचाने की फिक्र करते। ऐसा न करते हुए उन प्रेमियो ने एक दूसरे के लिए अपने प्राणों की आहुति दे डाली। प्रेम में ऐसी आत्मार्पणता हुआ करती है।

हिरन-हिरनी के मृत शरीर पर उधर से निकलने वाली दो सखियो की दृष्टि पड़ी। उन धराशायी प्राणियो को, देखकर

छोटी सखी विचार करती कि—शिकारी नजदीक नहीं दिखाई देता, बाण के घाव भी मालूम नहीं होते फिर ये दोनों प्राणी किस कारण से मरे हैं ? उसने बड़ी सखी से प्रश्न किया:—

नेडे नहीं दिसते पारधी लगे न दीसे बाण।
मैं तेने पूछूं हे सखी किस विध निकसे प्राण॥

बड़ी सखी बुद्धिमती थी। वह तुरत सारा रहस्य समझ गई। उसने उत्तर दिया:—

जल थोड़ा नेहा घणा, लगे प्रेम के बाण।
"तू पी तू पी" कर रहे, इस विध निकसे प्राण॥

वे हिरन-हिरनी एक दूसरे के शुभचिन्तक थे, हितैषी थे। हिरन ने सोचा कि—हिरनी मेरे आश्रित है। इसे प्यासी रखकर मैं जल पी लूं तो अनुचित होगा। आश्रित का पालन-पोषण करना मेरा फर्ज है। आश्रित भूखा-प्यासा रहे और स्वामी मौज-मजा उड़ावे यह बड़ा भारी अपराध है। हिरन के इस विचार मे स्वार्थ त्याग है और परहितैषिता है, कर्त्तव्यपालन है अतः यह उसका प्रेमभाव है। मोह नहीं। जहाँ स्वार्थ त्याग और परहितैषिता है वहाँ प्रेम भाव है। हिरनी ने सोचा कि स्वामी के प्यासे रहते मेरा पानी पीना स्वार्थपरायणता है। मैं इतनी स्वार्थ-परायण नहीं बन सकती। मेरा कर्त्तव्य अपने स्वामी के सुख दुःख में सहयोगिनी बनने का है अतः यदि पति प्यासे हैं तो मुझे

भी प्यास सहन करनी चाहिए। हिरनी के इस विचार में भी स्वार्थत्याग है परहितैषिता है कर्त्तव्य पालन है। अतः यह उसका प्रेमभाव है।

यदि उक्त हिरन-युगल प्रेम का अंशन होता तो वे अपनी अपनी प्यास बुझाने की कोशिश करते। आपाधापी करते। हिरन पहले पानी पर झपटता और हिरनी भी पहले झपटने का प्रयास करती। जहाँ स्वार्थ होता है वहाँ यह आपाधापी होती है। कोई मरे या कोई जीए उन्हे कोई मतलब नहीं होता।

उनकी मान्यता होती है कि

किस किस को याद कीजिए किस किस को रोइये।
आराम बड़ी चीज है मुंह ढंक के सोइये ॥

यह मोहासक्त प्राणी की विचारधारा है। इसमे स्वार्थ परायणता रही हुई है। ऐसा मोहान्ध व्यक्ति अपने ही पोषण का विचार करता है। ऐसा करने के लिए वह दूसरो का मनमाना शोषण भी करता है। प्रेम भाव इससे विपरीत है। उसमे स्वार्थ त्याग और परहितैषिता और कर्त्तव्य पालन समाया रहता है। यह है मोह और प्रेम का पूर्व पश्चिम और दक्षिण उत्तर जितना अन्तर ! प्रेम आत्मभाव है और मोह अनात्मभाव है। मोह को छोड़ने पर प्रेम भाव पैदा होता है। प्रभु के प्रति प्रेम भाव पैदा करने के लिये धन-धाम, स्त्री-पुत्रादि का मोह (आसक्ति) छोड़ना होता है। मोह-नीद को छोड़े बिना जागृति नहीं आ सकती और

जागृत हुए बिना प्रभु से प्रीति नही की जा सकती। प्रीति की रीति का तकाजा है कि दोनो जागृत हो। प्रभु तो जागृत है ही अब भक्त को जगना है, मोह नीद से उठना है। उठो बन्धुओ! उठो, मोह-निद्रा को छोड़ो और प्रभु से नाता जोड़ो।

जो नेत्र हरी-भरी वनस्पतियो से सम्बन्ध स्थापित करते हैं, वे भी तरावट पाते हैं। वनस्पति में रही हुई तरावट, ताजगी का लाभ उन नेत्रो को भी मिलता है जो उससे सम्पर्क स्थापित करते हैं। इसी तरह जो भक्त प्रभु की अनन्त गुण गरिमा रूप हरी-भरी वनस्पति से अपने हृदय के अंतरंग नेत्रों का सम्बन्ध स्थापित करते हैं। उन्हें अलौकिक शांति प्राप्त होती है।

यदि बिजली के तार से बल्ब के तार मिल जाते है तो उसमे प्रकाश आ ही जाता है। इसी तरह भक्त के हृदय के तार प्रभु से सम्बन्धित हो जाएं तो उनमे प्रभु के गुणों का प्रकाश अवश्य ही आएगा। परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि पावर हाउस कही फेल न हो जाय। पावर हाउस फेल हो जाय तो बल्ब और बिजली मे रोशनी नही आ सकती है।

इसलिए यदि अपने हृदय को आलोकित करना है तो प्रभु के अनन्त गुण रूप प्रकाश के पावर हाउस से अपना सम्बन्ध जोडना चाहिए। उस प्रकाश के पुंज से अवश्य ही हमे भी प्रकाश प्राप्त होगा बशर्ते कि हमारे हृदय के तार उस प्रकाश पुंज परमेश्वर से जुड़े हुए हों।

बन्धुओ ! भद्रपुरुषो ! मोह नींद को हटाओ, अपनी चेतना को जगाओ, प्रभु के गुण गाओ और जीवन को उन्नत बनाओ। प्रभु के गुणो का अक्षय प्रकाश पुंज सारे विश्व को आलोकित करता है। उस प्रकाश से अनेक बुझे हुए दीपक जल उठे हैं। अनेको में नई ज्योति, नई चेतना, नई प्रेरणा और नई स्फुरणा पैदा हुई है, होती है और होगी। जिन्होने भी प्रभु के साथ अपना सम्बन्ध जोडा है वे प्रकाशान्वित हुए है। आप भी प्रयत्न पूर्वक प्रभु के साथ सम्बन्ध जोड़िये। प्रभु से सम्बन्ध जोडने के साधन जुटाइये। साधन जुट जाने पर प्रकाश का करेन्ट तो शीघ्र ही चला आता है। तार, खम्भे, बल्ब आदि साधन तय्यार हो और कनेक्शन (सम्बन्ध) जुड़ गया हो तो बिजली के करन्ट मे कोई देर नहीं लगती। देर होती है तो खम्भे लगाने मे, तार लगाने मे, बल्ब लगाने मे। साधन जुट जाने पर और सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर बिजली का प्रकाश आने मे देर नही लगती। इसी तरह प्रभु-भजन के साधन जुटा जाने पर और प्रभु से सम्बन्ध स्थापित होने पर उनके प्रकाश-का संचार होने मे तनिक भी देर नही लगती है।

पावर हाउस का काम प्रकाश देना है परन्तु खम्भे और तार लगाना नहीं। यह काम तो व्यक्ति को स्वयं करना कराना होता है। मतलब यह है कि साधन जुटाने का कार्य स्वयं को करना है। जिस दीपक में तेल और बत्ती है उसे दूसरे प्रकाशित दीपक से प्रकाश मिलता है परन्तु जिसमे तेल और बत्ती

नहीं है तो वह प्रकाशित दीपक से प्रकाश नहीं ले सकता। प्रज्वलित और प्रकाशिक दीपक का काम प्रकाश देना है तेल या बत्ति देना नहीं। इसी तरह भक्त को भक्ति के साधन जुटाने चाहिए और प्रभु—भजन द्वारा प्रभु से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। मनुष्य-जीवन रूपी साधन को पाकर अपनी आत्मा में प्रभु के प्रकाश का संचार करना चाहिए। इन्सान का यह धर्म हो जाता है कि वह प्रभु के गुण गाए, उन्हे दोहराये और अपने जीवन को उत्थान की ओर ले जाए। इसलिए प्रभु के गुण गाना ही चाहिए, प्रभु का ध्यान ध्याना ही चाहिए और अपना जीवन उन्नत बनाना ही चाहिए। जो प्रभु का गुण गान करते है प्रभु के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हैं वे इस लोक परलोक मे आनन्द ही आनन्द पाते हैं। वे भक्त से भगवान् बन जाते हैं, आराधक से आराध्य बन जाते हैं। पूजक से पूज्य बन जाते है। प्रभु से सम्बन्ध रखने वाला प्रभुमय हो जाता है।

आश्विन शु० १२
ता० ३०-६-५२
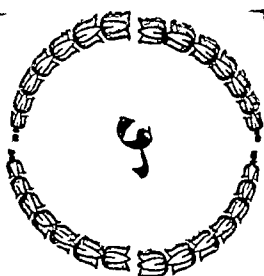
आत्म विकास की तीन श्रेणियाँ

(आत्मा—महात्मा और परमात्मा)
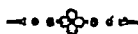
उपस्थित सज्जनों व देवियो !
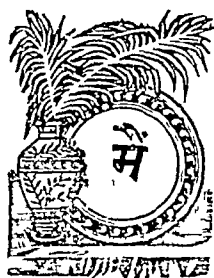
आज बजाजखाने (कपड़ा बाजार) में आया हूं। मै यहाँ क्यो आया ? मेरे यहाँ उपस्थित होने का क्या प्रयोजन है ? मै आज से रतलाम मे नहीं हूँ। लगभग ३। मास मुझे रतलाम मे आये हो चुके है। प्रतिदिन प्रातःकाल स्थानक मे प्रवचन होते हैं और धर्माभिलासी उससे लाभ उठा रहे हैं। कई दिनों से स्थानीय श्री संघ का अत्यन्त आग्रह हो रहा था कि

सार्वजनिक व्याख्यान का आयोजन हो ताकि सर्वसाधारण जनता भी लाभ उठा सके। परन्तु परिस्थितियाँ अनुकूल न होने से वैसा न हो सका। आज वह प्रसंग उपस्थित हुआ है। और मैं इस सार्वजनिक स्थान पर प्रभु-वाणी का अमर संदेश लेकर जनता की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

बन्धुओ! भगवद्-वाणी, ईश्वरीयज्ञान, परमात्मा का प्रकाश किसी कौम, जाति, वर्ण या समाज—विशेष के लिये नहीं है। भगवान का संदेश, आदेश और उपदेश प्राणि-मात्र के लिए है। वह जाति-बंधन, कौम-बंधन या और किसी प्रकार वर्ग बंधन से परे है। वह संदेश और उपदेश मानव के द्वारा मानव २ के बीच खड़ी की गई दीवारों से प्रतिहत नहीं है। वह मानव-निर्मित भेद की शृङ्खलाओं से बँधा हुआ नहीं है। भगवान् और उनका उपदेश किसी संस्था, सङ्घ, सोसाइटी, समाज, मंडल और अन्य इस प्रकार के किसी भी साम्प्रदायिक समूह विशेष के लिए रिजर्व (सुरक्षित) नहीं है। वह तो सर्वव्यापक है, सर्वदेशीय है, सर्वकालीन है और सार्वजनिक है। परमात्मा स्वयं बन्धनों से मुक्त है। अतः उनका संदेश और उपदेश भी बन्धनों से मुक्त है। परमात्मा किसी मन्दिर मे, मस्जिद में, गुरूद्वारे में, गिरजाघर में, स्थानक से बन्द नहीं हैं। उसका प्रकाश सर्वत्र है। घट-घट में, अणु-अणु में, कण-कण मे, जन-जन में उसकी ज्योति जगमगा रही है। उसे चाहे जिस नाम से सम्बोधित कीजिए वह परम-ज्योति एक ही है। उसे अर्हन् कहो, परमात्मा कहो, ईश्वर कहो,

राम कहो, रहमान कहो, खुदा कहो, सब पर्यायवाची नाम है। सब का अभिधेय एक है। ये अभिधान (नाम) अलग २ है। परन्तु इनका अभिधेय एक ही है। कहा है:—

राम कहो, रहमान कहो, कोई कान्ह कहो महादेव री।
पारसनाथ कहो कोई ब्रह्मा सकल विश्व स्वयमेवरी राम०॥१॥
भजन भेद कहावत नाना नाना एकमृतीका रूपरी।
तैसे खंड कल्पनारोचित आप अखंड सरूपरी राम०॥२॥
निजपद रमे राम सो कहिये, रहम करे रहमान री।
कर्षे करम कान सो कहिये, महादेव निर्वाण री राम०॥३॥
परसे रूप पारस सो कहिये, ब्रह्मचिन्हे सो ब्रह्म री।
इह विधि साधो अनन्दघन, चेतनमय निकर्म री ॥राम० ४॥

तात्पर्य यह है कि उस परमात्मा को चाहे जिस नाम से सम्बोधित करे उसका मूल स्वरूप एक ही है। कर्म रहित चेतन मय अवस्था ही परमात्म भाव है।

बन्धुओ! इस विश्व के अनन्त दृश्य और अदृश्य पदार्थो कि तह में आप जाइये आपको उन सब मे दो ही प्रकार की शक्तियो का हाथ प्रतीत होगा। वे दो शक्तियां है—चेतन शक्ति और जड़ शक्ति। यह सारा विश्व, यह अखिल ब्रह्मान्ड. यह समस्त सृष्टि जड़ और चेतन का ही खेल है। इन दो शक्तियो की ही यह सारी

लीला है। जिन चिजो मे जान नही है, ज्ञान नही है, भान नही है, प्राण नही है वे पौद्‌गलिक जड़ वस्तुएँ हैं। उन्हे सुख दु.ख का अनुभव नही होता नेकी-बदी की पहचान नही होती, कर्त्तव्या-कर्त्तव्य का भान नही होता। ऐसी चीजें जड़ कहलाती हैं। इन जड़ वस्तुओ की नाना विध परिणतियां और नानाविध शक्तीयाँ है। इसके विपरीत जिसे सुख दुःख का भान हो, नेकी-बदी की पहचान हो, जिसमे ज्ञान और प्राण हो वह चेतन है। बस, इन दो शक्तियो के नाना रूपी का नाम ही संसार है। इनसे भिन्न और कोई वस्तु नही है। दुनियाँ में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, न थी और न होगी जो इन दोनो मे से किसी एक वर्ग में न आती हो। विश्व मे यही दो मूल भूत तत्त्व है, सब इनकी विविध अन्य परिणतियाँ है ।

चेतन सत्ता की तीन स्टेज (श्रेणियाँ) हैं। न्यूनाधिक विकास की अपेक्षा से उसे तीन श्रेणियो मे विभाजित किया गया है। वे तीन श्रेणियाँ इस प्रकार है.—(१) आत्मा (२) महात्मा और (३) परमात्मा। इन सबका मूलाधार आत्मा है। केन्द्रीय गवर्नमेन्ट आत्मा है। यहीं से सब लाइनें रवाना होती है। आत्मा की इन तीन श्रेणियो के सम्बन्ध मे किसी भी आत्मवादी को विवाद नहीं हो सकता। यह निर्विवाद सर्व सम्मत सिद्धान्त है। जैन-अजैन-हिन्दु मुस्लिम, आर्य, सिक्ख, वगैरह सबको यह मान्य है।

जिसमे चेतना है, जान है, ज्ञान है, प्राण है, सुख दुःख का भान है नेकी-बदी की पहचान है वह आत्मा है। चाहे वह योगी हो या भोगी हो; धनी हो या निर्धन हो, बाल हो या वृद्ध हो, चरिन्दा हो या परिन्दा हो, एकेन्द्रिय हो, बेइन्द्रिय हो यावत् पचेन्द्रिय हो, सुखी हो या दु:खी हो सब मे आत्मा विद्यमान है। जिनकी क्रियाएँ अपने आप तक ही सीमित होती हैं, जो अपने भरण-पोषण की ही चिन्ता करते है, वे सामान्य आत्माएँ प्रथम श्रेणी में समाविष्ट होती है।

जो आत्माएँ स्वार्थ के संकुचित क्षेत्र से ऊपर उठ जाती है, जिनके जीवन का स्तर ऊंचा बन जाता है, जो अपना ही विचार न करते हुए दूसरो की भलाई का भी चिन्तन, मनन और अनुशीलन करते हैं व दूसरी श्रेणी की आत्माएँ है। उन्हे 'महात्मा' शब्द से दुनिया पहचानती है।

जो मानव मानव-पद की ऊँची भूमिका प्राप्त करके भी स्वार्थ पोषण और निरा पेट-भरण में ही लगा रहता है वह क्षुद्र प्राणियो की तरह ही अविकसित स्थिति में होता है। नीतिकार कहते है:—

आत्मार्थमस्मिल्लोके को न जीवति मानवः।
परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति ॥

महापुरुषो की यह खुली ललकार है बुलन्द पुकार है, डंके की चोट की जाने वाली उद्घोषणा है कि हे अपने लिए धन

कमाने वालो ! गगनस्पर्शी अट्टालिकाएँ चुनाने वालो, ऐश-इशरत के सामान जुटाने वालो ! तुम यह सब काम करके कुछ अनोखी बात नहीं कर रहे हो। कीड़े-मकोड़े, डांस-मच्छर, खटमल आदि क्षुद्र प्राणी जो करते है वही कुछ तुम भी कर रहे हो। तुम अपने आपको उन क्षुद्र जन्तुओं से बड़ा समझते हो परन्तु तुम किस बात में उनसे आगे बढ़े हुए हो, यह तो बताओ ? तुम कहोगे-हम सेठ हैं, धनकुबेर है, साहूकार है, ऊंची २ हवेलियों में रहते हैं परन्तु इतने मात्र से तुम उनसे श्रेष्ठ होने का दावा नहीं कर सकते। अपनी २ बिसात के अनुसार वे क्षुद्र प्राणी भी जीवन के साधन इकट्ठा करते है, रहने के लिए मकान बनाते हैं। तुम गगन चुम्बी अट्टालिकाओं का निर्माण करा कर फूले नहीं समाते तो वे प्राणी भी फौज की फौज इकट्ठे होकर सुन्दर घर का निर्माण करते हैं। तुम लोग भी जरूरी-बिन जरूरी साधन जुटाते हो तो वे भी सामान जुटाते है। इतनी बात अवश्य है कि तुम बेईमानी से भी इकट्ठा करते हो ब्लेक मार्केट करते हो और वे बेचारे बेईमानी नहीं करते, डाका नहीं डालते, ब्लेक मार्केट नहीं करते। वे अपने परिश्रम से जीवन के साधन जुटाते हैं—बेईमानी से नहीं इतनी जरूर उनमे विशेषता है। जितनी उनकी बिसात और ताकत है उसके अनुसार वे भी ये सब कार्य करते हैं। मनुष्य भी तो अपनी २ बिसात के अनुसार ही साधन जुटाता है न ? कोई मनुष्य झोपड़ी खड़ी करता है और कोई मनुष्य शीश-महल बनवाता है। तो बात यह है कि साधन-जुटाने से, धन कमाने से महल खड़ा करने से, मोटरो और बंगलों में हवा खाने से कोई

बड़प्पन नहीं आ जाता। खाना-पीना, ऐश-आराम करना ये बातें तो क्षुद्र कीट-पतगों मे भी पाई जाती है तो इनसे मानव-जीवन का क्या विशेष महत्त्व है? मानव-जीवन का महत्त्व है— परोपकार में। अपने लिए सब कोई जीते हैं परन्तु जो दूसरे की भलाई के लिए जीते हैं उनका ही जीवन धन्य है, सार्थक है, सफल है। कहा है—

> मरना भला है उनका जो अपने लिए जीए।
> जिन्दे हैं वे जो मर चुके औरों की भलाई के लिए॥

जो खाने-पीने और धन कमाने मे ही लगे रहते है, जिनकी यही दिन चर्या है वे प्रथमश्रेणी मे ही अटक रहे हैं। जो अपने जीवन को स्वार्थ से ऊपर उठाते है, उन्नत करते है, विकारो को शान्त करते है, वे आत्मा से महात्मा बन जाते है। वे प्रथमश्रेणी से निकलकर विकास करते हुए दूसरी श्रेणी मे आ जाते है। इन दूसरी श्रेणी वाले आत्मा का जीवन अपने लिए नहीं होता बल्कि विश्व के लिए होता है। वे जीवन-निर्वाह के लिए थोड़ा लेते है और अधिक देते है। वे धन नहीं लेते, रुपया नही लेते, ऐश-आराम के साधन नहीं लेते। शरीर के लिए भोजन और वस्त्र लेते हैं और बदले में निरीह भाव से बहुत कुछ देते है। वे वह चीज देते है जो दूसरा कोई नहीं देता है। वे ज्ञान देते हैं, परमात्मा का भान कराते है, आत्मा की परमात्मा के साथ पहचान कराते हैं। वे भूले भटको को सही मार्ग दिखाते हैं।

महात्मा वह कड़ी है जो आत्मा को परमात्मा से जोड़ती है। महात्मा विश्व के लिए वरदान रूप होते हैं।

भद्रपुरुषो ! आत्मा को महात्मा बनाने वाली चार प्रकार की भावनाएँ विचार-धाराएँ है। उनका अवलम्बन लेने से आत्मा महात्मा की श्रेणी मे आ जाता है। वे चार विचार-धाराएँ शास्त्रीय परिभाषा मे "भावना" कही जाती है। उनके नाम इस प्रकार है.—(१) मैत्री भावना (२) करुणा भावना (३) प्रमोद भावना (४) मध्यस्थ भावना।

मैत्री भावना—संसार के सब प्राणियो को मित्र की दृष्टि से देखना मैत्री भावना है। "मित्ती मे सव्व भूएसु" सर्व जीवो के साथ मेरी मैत्री है किसी के प्रति मेरा द्वेष नहीं है इस प्रकार की विचार-धारा रखना मैत्री भावना है। जो आत्मा से महात्मा की श्रेणी मे आना चाहते हैं उन्हे प्राणी-मात्र के साथ मित्रता की भावना का अवलम्बन लेना चाहिए। जो इस श्रेणी में आ जाते हैं वे सब का भला चाहते हैं। उनकी दृष्टि मे, उनके मन में, उनकी वाणी में विश्व-प्रेम भरा होता है। सारे विश्व को वे आत्मवत् समझते है। दूसरो के दु खो को वे अपना दुख समझते है। उनकी आत्म भावना अपने तक सीमित न रहकर विश्व-व्यापी बन जाती है। सारा विश्व उन्हे आत्ममय प्रतीत होता है। वे अपने दुःखो को सहन कर सकते हैं परन्तु दूसरों का दुःख उन्हें असह्य लगता है अतः वे दुखियों के दुःखों को दूर

करने का भरसक प्रयत्न करते है। वे प्रभु से यही प्रार्थना करते है —

दयामय, ऐसी मति हो जाय ॥ दयामय० ॥
अपने सब दुःखों को सह लूं पर दुःख सहा न जाय।
औरों के सुख को सुख समझूं सुख का करूं उपाय ॥दयामय०॥
भूला भटका उलटी मति का जो है जन समुदाय।
उसे दिखाऊं सच्चा सत्पथ निज सर्वस्व लगाय ॥दयामय०॥

जो आत्माएँ स्वार्थ के निम्नतम दायरे से ऊपर उठ जाती है और जिनका आत्मत्व अपने और अपने कुटुम्बियो तक मर्यादित न होकर "वसुधैव कुटुम्बकम्" तक पहुँच गया होता है वे ही आत्माएँ महात्मा बन जाती है। जिसमे 'वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना आई वह महात्मा बना और जो महात्मा होता है उसमे "वसुधैव कुटुम्बकम्" और "मित्ती मे सव्वभूएसु" की भावना अवश्यमेव होनी है। जब यह भावना आ जाती है तो वह किसी दूसरे का दुःख देख भी नही सकता तो दुःख देने की बात तो हो ही कैसे सकती है? उसका हृदय दुखियो के दुःख को देख कर मोम के समान द्रवीभूत हो जाता है। उसके हृदय में कारूण्य का, दया का, अनुकम्पा का स्रोत बहता रहता है। दूसरों को दुखी देख कर वह चुपचाप अकर्मण्य बन कर नहीं बैठ सकता। वह उन्हे सुखी करने का, शान्ति देने का भरसक प्रयास करता है।

महात्मा वह कडी है जो आत्मा को परमात्मा से जोडती है। महात्मा विश्व के लिए वरदान रूप होते हैं।

भद्रपुरुषो ! आत्मा को महात्मा बनाने वाली चार प्रकार की भावनाएँ विचार-धाराएँ है। उनका अवलम्बन लेने से आत्मा महात्मा की श्रेणी मे आ जाता है। वे चार विचार-धाराएँ शास्त्रीय परिभाषा मे "भावना" कही जाती है। उनके नाम इस प्रकार है.—(१) मैत्री भावना (२) करुणा भावना (३) प्रमोद भावना (४) मध्यस्थ भावना।

मैत्री भावना—संसार के सब प्राणियो को मित्र को दृष्टि से देखना मैत्री भावना है। "मित्ती मे सव्व भूएसु" सर्व जीवों के साथ मेरी मैत्री है किसी के प्रति मेरा द्वेष नही है इस प्रकार की विचार-धारा रखना मैत्री भावना है। जो आत्मा से महात्मा की श्रेणी मे आना चाहते है उन्हे प्राणी-मात्र के साथ मित्रता की भावना का अवलम्बन लेना चाहिए। जो इस श्रेणी में आ जाते हैं वे सब का भला चाहते हैं। उनकी दृष्टि में, उनके मन में, उनकी वाणी मे विश्व-प्रेम भरा होता है। सारे विश्व को वे आत्मवत् समझते हैं। दूसरो के दु खो को वे अपना सुख समझते हैं। उनकी आत्म भावना अपने तक सीमित न रहकर विश्व-व्यापी बन जाती है। सारा विश्व उन्हे आत्ममय प्रतीत होता है। वे अपने दुःखो को सहन कर सकते है परन्तु दूसरों का दुःख उन्हे असह्य लगता है अतः वे दुखियो के दुःखों को दूर

करने का भरसक प्रयत्न करते है। वे प्रभु से यही प्रार्थना करते है.—

दयामय, ऐसी मति हो जाय ।। दयामय० ।।
अपने सब दुःखों को सह लूं पर दुःख सहा न जाय ।
औरों के सुख को सुख समझूं सुख का करूं उपाय ।।दयामय०।।
भूला भटका उलटी मति का जो है जन समुदाय ।
उसे दिखाऊं सच्चा सत्पथ निज सर्वस्व लगाय ।।दयामय०।।

जो आत्माएँ स्वार्थ के निम्नतम दायरे से ऊपर उठ जाती है और जिनका आत्मत्व अपने और अपने कुटुम्बियो तक मर्यादित न होकर "वसुधैव कुटुम्बकम्" तक पहुँच गया होता है वे ही आत्माएँ महात्मा बन जाती है। जिसमे 'वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना आई वह महात्मा बना और जो महात्मा होता है उसमे "वसुधैव कुटुम्बकम्" और "मित्ती मे सव्वभूएसु" की भावना अवश्यमेव होनी है। जब यह भावना आ जाती है तो वह किसी दूसरे का दु:ख देख भी नही सकता तो दुःख देने की बात तो हो ही कैसे सकती है ? उसका हृदय दुखियो के दु:ख को देख कर मोम के समान द्रवीभूत हो जाता है। उसके हृदय में कारुण्य का, दया का, अनुकम्पा का स्रोत बहता रहता है। दूसरों को दुखी देख कर वह चुपचाप अकर्मण्य बन कर नहीं बैठ सकता। वह उन्हे सुखी करने का, शान्ति देने का भरसक प्रयास करता है।

कारुण्य भावनाः—जब प्राणिमात्र के प्रति मित्रता या बन्धुता का भाव पैदा हो जाता है तो करुणा का भाव स्वयमेव जागृत होजाता है। कोई भी सच्चा मित्र या सच्चा भाई अपने मित्र या भाई को दुःखी नहीं देख सकता। वह यथा शक्ति उसके दुःखों को दूर करने का प्रयत्न करता है। जो व्यक्ति अपने बन्धु को या मित्र को संकट मे, आपत्ति मे, दुःख में फँसा हुआ देखकर भी चुपचाप अकर्मण्य बना बैठा रहता है वह स्वार्थ परायण है, खुद गरज है, वह मित्र या भाई कहलाने का अधिकारी नहीं है। सच्चा मित्र या सच्चा भाई वही है जो विपद् ग्रस्त भाई या मित्र की सहायता कर उसे विपत्ति से उबारे। आप माल मलीदे खाता हो, मोटर-कारो मे घूमता हो, बंगलो मे मौज उड़ाता हो और उसके सामने उसका भाई भूख के मारे तड़फता हो, तन ढॉकने को चीथड़ा भी उसे नसीब न होता हो, रहने के लिए झोपड़ी भी न मिलती हो फिर भी वह पत्थर-सा बनकर यह सब देखता है तो समझ लीजिए वह इन्सान नहीं है, हैवान है। हैवान भी नहीं वह तो निरा पाषाण है। पत्थर पर प्रलयकालीन महामेघ मूसलधार वर्षा करें तो भी उसका एक अंश भी भीतर से गीला नहीं होता इसी तरह जिसका हृदय पाषाण के समान कठोर होता है वह दुखियो के दुखः देखकर भी द्रवित नहीं होता। जिसमें रहम नहीं है, करुणा नहीं है वह हृदयहीन है। यदि हृदय हो तो वह अवश्य दुखियो के दुःख-दर्द से पिघलना ही चाहिए।

आज भारतवासियो का करुणा का स्रोत सूख रहा है। यदि उनमें करुणा की मन्दाकिनी प्रवाहित होती तो उनके भाई जो

पूर्वी बंगाल और पश्चिमी पंजाब से लुटकर बरबाद होकर आये है और जो सडको पर खुले आसमान के नीचे जिन्दगी बसर करते हैं, आज तक कही न कहीं जम जाते। ए भारत के नौनिहालो ! एक ही माता के उदर से जन्म लेने वालो का परस्परिक रिश्ता भाई-भाई का होता है। जो पूर्वी बगाल और पश्चिमी पंजाब से वे-बरबार होकर आये है वे भारत मा के ही लाल हैं आपका और उनका भाई भाई का नाता है। भाई के दुखो को मिटाना भाई का कर्त्तव्य है। यदि आपने उन उजड़े हुए व्यक्तियों को भाई की बुद्धि से देखा होता तो वे कभी के आबाद होगये होते और दर दर की खाक छानते हुए नजर नही आते।

वन्धुओ ! याद रखिये जहाँ करुणा है वहाँ जप, तप संयम माला फेरना आदि की उपयोगिता है। यदि हृदय मे दया नही है तो जप, तप सयम आदि की सच्ची साधना नही हो सकती है। धर्म की साधना के लिए हृदय की आर्द्रता आवश्यक है। गीली जमीन मे ही अङ्कुर प्रकट होते हैं। शुष्क भूमि में नहीं। जप, तप, सयम आदि धर्म के अङ्कुर भी वहीं उगते है जहाँ करुणा रूपी आर्द्रता है, स्निग्धता है। पाषाण हृदय मे धर्म के अङ्कुर नही लह-लहा सकते हैं। तल्लेदार पगड़ी तभी शोभा दे सकती है जब पहले धोती पहनने को हो। उधर धोती का पता न हो तो तल्लेदार पगड़ी शोभास्पद नहीं होती वल्कि उपहासास्पद हो जाती है। इसी तरह धर्माराधन और प्रभु-भजन रूपी तल्लेदार पगड़ी के पहले करुणा रूपी धोती का होना आवश्यक है। तू भजन कर या न कर, मदिर

में जा या न जा, मस्जिद मे नमाज पढ़ या न पढ़, व्रत-उपवास कर या न कर, साधुओं को सिर झुका या न झुका, माला फिरा या न फिरा परन्तु किसी दुःखी का दिल न दुखा। यही बड़ा जप है, तप है, भजन है।

भद्र पुरुषो ! जरा अन्दर उतर कर भारतीय-जन-जीवन का निरीक्षण करिये आपको दुःख दर्द की रोमाञ्चकारी दिल दहला देने वाली करुण कहानियाँ मिलेगी। करोड़ों व्यक्ति दाने २ के लिए तरसते हुए दीख पड़ेंगे, लाखों नर-नारी लाज बचाने तक को कपडा न पाने वाले मिलेंगे, लाखों अनाथ बालक मिलेंगे जिनकी परवरिश करने वाला कोई नहीं, लाखो विधवाएं ऐसी मिलेंगी जिनकी जीवन नैया छिन्न भिन्न होकर डिग मगा रही होगी, लाखो रोगी मिलेंगे जो दुःख के मारे कराह रहे होंगे। इस दुखभरे नजारे के लिए कौन जवाबदार है? मै कहूँगा कि यह दुःख दृश्य मानव का ही पैदा किया हुआ है। यह दुखभरी कहानी मानव की ही रची हुई है और मानव ही इस दुखद कहानी का अन्त कर सकता है। यह गरीबी, यह फाकाकशी, यह बेकारी कुछ अमीरों के शोषण का परिणाम है। इन्होने अपनी तिजोरियों को चाँदी सोने से भरने के लिए, गगनचुम्बी अट्टालिकाओं मे रहने के लिए, मोटरों मे हवा खाने के लिए गरीबों का शोषण किया, उनकी रोजी और धन्धा नष्ट किया, उनके श्रम का उचित प्रतिमूल्य नहीं दिया तथा ऐसी व्यवस्था प्रचलित की जिससे पैसे वाला अधिक पैसा वाला बनता चला जाय और गरीब ज्यादा

से ज्यादा गरीब बनता चला जाय। यह विषमता की खाई मानव के द्वारा ही खोदी गई है। इसका उपाय भी मानव के हाथ मे ही है। यदि साधन सम्पन्न व्यक्तियो के हृदय मे करूणा उत्पन्न हो जाय, यदि यह विषमता का कांटा उन्हें चुभने लग जाय, यदि वे इस विषमता का अन्त करने की सोच ले तो वे वैसा कर सकते हैं। वे इस फैली हुई भूख रूपी महामारी का अन्त कर सकते है। वे लाखो व्यक्तियो को धन्धे से लगा सकते हैं। लाखों का रोटी कपड़े का सवाल हल कर सकते है। इसके लिए चाहिए सिर्फ दयामय हृदय। श्रीमानो के हृदय मे दया पैदा हो जाय तो भूखे, नंगो और बेकारो का सवाल ही हल हो जाय।

कई लोग गवर्नमेन्ट से यह आशा करते है कि रोटी के सवाल को हल करने की जवाबदारी उसकी है अतः वह इसे पूर्ण करेगी। परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि जनता के सहयोग के बिना सरकार किसी भी योजना मे सफल नहीं हो सकती। यह कार्य तो जनता का है और जनता ही इस सवाल का हल निकाल सकती है। साधन सम्पन्नो के दिलों मे यदि रहम पैदा हो जाय, करुणा की भावना आ जाय, तो यह समस्या स्वयमेव हल हो सकती है। अपना पेट तो सब भर लेते है परन्तु खाना उसी का सफल है जो किसी भूखे को खिलाता है। कहा है:—

अन्न का स्वाद सो तो सुनिये पराये मुख
रस का स्वाद सो तो प्रभु रस गाइये।

जिह्वा का स्वाद बुरा बोलिये न काहूँ सेती
धन का स्वाद दान मान कर दिपाइये ॥
घर का स्वाद सो तो घरणी सुशीलव्रत
देही का स्वाद सो निरोगी देह पाइए ।
सुख का स्वाद सो तो भजिए त्रिभुवन नाथ
खाने का स्वाद किसी भूखे को खिलाइये ॥

सज्जनो ! आज दुनिया में सर्वत्र अशान्ति के बादल छा रहे है । संघर्ष छिड़ रहा है । वर्गगत संघर्ष जोर पकड़ता जा रहा है । राष्ट्रों की गुट बन्दियाँ बन रही हैं । पूंजीवाद और साम्यवाद मे सघर्षण हो रहा है । शस्त्र-निर्माण में तीव्र प्रतिस्पर्धा हो रही है । नित्य नवीन सहारक, विनाशक और प्रलयकर शस्त्रास्त्रो का निर्माण किया जा रहा है । विश्व की शान्ति खतरे में है । दुनिया के थोड़े से विलक्षण पुरुष इस संहारक लीला के परिणाम से चौंक उठे हैं और वे इस समस्या के हल के लिए शान्ति सम्मेलनो का आयोजन करते हैं । परन्तु शान्ति-सम्मेलनो के आयोजन मात्र से शान्ति नहीं हो सकती । कागजी घोड़े दौडाने से या काल्पनिक ईरान के तुरान और तुरान के ईरान घोड़े दौड़ाने से काम चलने वाला नहीं है । वृक्ष की जड़ में आग लगी हो तब टहनियों को पानी देने से काम नहीं चल सकता है । कोई व्यक्ति वृक्ष के मूल मे लगी हुई आग की उपेक्षा करके टहनियो को जल से सींचे और उस वृक्ष से फल फूल और शीतल छाया मिलने

की आशा रखे तो वह निराश ही होगा। उसका वह टहनियो को सींचने का श्रम निरर्थक होगा। यदि वह वृक्ष को सुरक्षित रखना चाहता है और उससे फल-फूल और शीतल छाया की आशा रखता है तो उसे पहले उसके मूल मे लगी हुई आग को शान्त करना होगा। जब तक वह आग शान्त न होगी तब तक उस वृक्ष के अग प्रत्यग फल फूल नही सकते, विकसित नहीं हो सकते। शाखाओ को कोई सींचे या न सींचे परन्तु मूल मे लगी हुई आग को शान्त करेगा तो ही वह वृक्ष छाया दे सकेगा, फल फूल दे सकेगा, हरा भरा रह सकेगा।

भारत एक महाकायिक वृक्ष के समान है। इसकी शाखाएँ प्रतिशाखाएँ, टहनियाँ दूर-दूर तक फैली हुई है। किसी समय यह वृक्ष खूब हरा-भरा और फला-फूला था। इसकी समृद्धि की दूर-दूर देशो तक प्रसिद्ध थी। अनेक विदेशी पंछी इसका सार और आधार पाने के लिए लालायित थे। उनकी आख इस हरे भरे-फले फूले वृक्ष पर लग रही थी। वे इसके स्वादिष्ट फलो पर मुग्ध हो चुके थे। दुर्दैव से ऐसा अवसर आया कि उन फिरंगियो का इस पर आधिपत्य होगया। उन्होने मनमाने ढंग से इसका रस चूसा। सदियो तक वे इसका सार लूटते रहे, रस चूसते रहे, इसकी शाखाएँ भंग करते रहे और अन्ततः इसे ठूंठ के रूप में छोड़कर इस आशा से चले गये कि अब यह स्वयमेव सूख जायगा। उन विदेशियो ने इसके साथ मनमानी करने मे कोई कसर न रखी और जाते जाते भी वे इसके नाश की योजना

बनाकर गये। परन्तु सद्भाग्य है इस महाकाय वृक्ष का जिसे पटेल जैसे चतुर दूरदर्शी बागवान का संयोग मिला। चतुर बागवान ने सारी करतूतों को भाप लिया। उसने अपनी निपुणता और कार्य कुशलता से इस महाकाय वृक्ष को सर्वनाश से उबार लिया। उसने इसकी बिखरी हुई शक्तियो को केन्द्रित कर इसे दृढ़ता प्रदान की। मूल में आग लगाने की विदेशी योजना निष्फल हुई। इसका श्रेय पटेल जैसे दूरदर्शी नेताओं को है। उन्होंने इसे सर्वनाश के मुख से उबार लिया है। अब प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य है कि वह इसके मूल को सींचे और इसे पुनः हरा-भरा और फला-फूला बनावे ताकि इसके मधुर फलों का और शीतल छाया का आनन्द हरेक भारतवासी और विदेशी पथिक भी उठा सकें।

इस क्षत-विक्षत भारत रूपी वृक्ष को जल-सिंचन की आवश्यकता है परन्तु दुर्भाग्य से कुछ नागरिक और कुछ अधिकारी गण अपनी जबाबदारी और उत्तरदायित्व को भूल कर इस वृक्ष के मूल मे आग लगाने जैसा कार्य कर रहे हैं। चपरासी से लेकर ऊंची कुर्सी पर बैठने वाले अधिकारी प्रायः राष्ट्र के कल्याण की भावना को भुलाकर अपनी २ बुझाने में लग पड़े हैं। तृष्णा की आग इन्हें बुरी तरह जला रही है। आगे-पीछे की सब कसर निकाल लेना चाहते हैं। तलवाने महनताने और नजराने वसूल किये जा रहे हैं। सबको अपनी २ पड़ी है, राष्ट्र के कल्याण की बात गौण हो गई है। रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार का बोल बाला है! यह भारत-वृक्ष के मूल मे आग लगाने का कार्य हो रहा है।

दूसरी तरफ सत्ता हथियाने के लिए नई नई जमातें संस्थाएँ, पार्टियाँ, परिषद्, खड़ी हो रही हैं। वे कहती है कि पुरानी संस्था सड़ चुकी है उसमें विकृति आ गई है। वह काम करने योग्य नहीं रही है। यह कह कर वे पुरानी संस्था की आलोचना और निन्दा करती है। उसे गिरा देने की कोशिश करती है। परन्तु याद रखना चाहिए कि पुरानी इमारत को गिरा देना तो आसान है परन्तु नई इमारत खड़ी करना कठिन है। जब तक नई सुदृढ इमारत खडी न हो जाय तब तक पुरानी इमारत को ढाह देना बुद्धिमत्ता नहीं है। ऐसा करने से तो उसे मलवे पर ही जीवन गुजारना पड़ेगा और जो पहले थोड़ी बहुत धूप-शीत से रक्षा होती थी उससे भी वंचित रहना पड़ेगा और धूप-ठंड तथा वर्षा की मुसीबतें सहन करनी पड़ेगी। इसलिए पुरानी इमारत को ढाहने की कोशिश तब तक नही की जानी चाहिए जब तक कि उससे अच्छी दूसरी दृढ़ इमारत खड़ी न कर ली जाय। हाँ, इतना अवश्य आवश्यक है कि उस पुराने मकान की जो जो ईंटें कमजोर हो गई है उन्हे निकाल कर उस जगह नई ईंटें डाल कर उसका परिमार्जन किया जाय जो ईंटें इतनी कमजोर हो गई हैं कि वे दीवार मे रखने काबिल नहीं हैं तो उन्हे अलग किया जा सकता है ताकि दूसरी ईंटो पर उनका बुरा प्रभाव न पड़े परन्तु इसका यह तरीका तो नही है कि उस दीवार को ही ढाहने का प्रयत्न किया जाय। जल्दबाजी से काम न लो। गर्म गर्म न खाओ। अधीर न बनो। शान्ति से काम लो। विकारों को दूर करो परन्तु दीवार को न गिराओ। जिसका परिमार्जन और

स्वार्थ, करुणा का विरोधी होने से भयंकर पाप है। स्वार्थ परायण व्यक्ति अपने तनिक से मतलब के लिए दूसरे के सर्वस्व को नष्ट करने के लिए तत्पर हो जाता है। वह ठड उड़ाने के लिए किसी गरीब की झोपडी मे आग लगाने के लिए तयार हो जाता है। बेचारा गरीब गिड़गिडा कर कहता है कि—"मैने इसे बड़े श्रम से, पसीना बहाकर तयार की है, सर्दी गर्मी से बचने के लिए मेरा यही एक मात्र साधन है। यह झोपड़ी ही मेरा सर्वस्व है।" परन्तु वह स्वार्थ परायण शक्तिमान व्यक्ति उसकी एक नहीं सुनता है और झोपड़ी मे आग लगा देता है। कितनी नृशंसता, क्रूरता, निर्दयता, नीचता और स्वार्थ परायणता है? सर्दी मिटाने के अन्य उपाय भी काम में लाये जा सकते थे। गर्म कपड़ा ओढ़ा जा सकता था, धूप का सेवन किया जा सकता था, हवा की रूकावट वाले स्थान का अवलम्बन लिया जा सकता था परन्तु उस स्वार्थी को इतना सोचने की क्या आवश्यकता! वह क्यो कर विचारने लगा! उसे तो येन केन प्रकारेण अपना मतलब हल करना है। वह दूसरे पर क्या बीतेगी यह नही सोचता। उसे सर्दी दूर नहीं करनी थी उसे तो गरीब की झोपड़ी जलानी थी। इसी तरह स्वार्थ-परायण व्यक्ति अपने जरा से मतलब के लिए दूसरे के बड़े से बड़े हित को—सर्वस्व को नष्ट कर देता है। यह भयंकर पाप है। इससे बढ़कर और पाप क्या हो सकता है?

अय धन के लोभियो! करोड़पति बनने के सपने देखने वालो! अपनी तृष्णा की पूर्ति करने के लिए दूसरे के सर्वस्व को

नष्ट न करो। यह तृष्णा न कभी पूरी हुई है और न पूरी होगी। यह तृष्णा की चलनी समुद्रों पानी उडेल दिये जाने पर भी खाली की खाली रहेगी। यह कभी नहीं भरी जा सकती है। कुए, नदियाँ, सरोवर भर जाते हैं परन्तु मनुष्य की यह छोटी सी खोपड़ी नहीं भरती है। शनिवार के दिन डाकोत शनिजी की मूर्ति लेकर आता है। लोग शनिजी पर तेल डालते है। शनिजी की मूर्ति के नीचे एक छेदवाली कटोरी होती है। जो तेल शनिजी पर चढ़ाया जाता है वह उस कटोरी के छेद से होकर नीचे के लोटे मे चला जाता है। यह नीचे का लोटा तेल से भर जाता है परन्तु वह छेदवाली कटोरी चाहे जितना तेल डालने पर भी खाली की खाली रहती है। इसी तरह मानव की तृष्णातुर खोपड़ी खाली ही रहती है वह लाखो-करोड़ो का धन पाने पर भी तृप्त नहीं होती। कहा है—

जो दस वीस पचास भये शत होय हजार तो लक्ख मंगेगी
कोटि अर्ब खर्ब असंख्य पृथ्वी पति होने की चाह जगेगी
स्वर्ग पाताल का राज्य किया तृष्णा अधिकाधिक आग लगेगी
सुन्दर एक संतोष बिना शठ! तेरी तो भूख कभी न भगेगी

यदि खुदा सारी पृथ्वी किसी को दे दे तो भी उस खुदा के बंदे की हविस (इच्छा) शान्त नहीं होती। उर्दू के शायर ने कहा है:—

मुख से बस हर्गिज न करते खुदा के बन्दे।
गर हरिसों को खुदा सारी खुदाई देता॥

जैन शास्त्रकारो ने स्पष्ट कहा है:—

सुवण्ण रूवस्स उ पव्वया भवे।
सिया हु केलास समा असंखया॥
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किञ्चि।
इच्छा हु आगाससमा अणन्तिया॥

मनुष्य की इच्छा आकाश के समान अनन्त हैं। न उसका ओर है न छोर। सोने चांदी के कैलाश के समान असंख्य पवत भी यदि किसी लोभी व्यक्ति को दे दिये जाएँ तो भी वह तृप्त न होगा। वह और चाह करेगा। इच्छा की पूर्ति होना असंभव है। तृष्णा की शान्ति धन प्राप्ति से नहीं होती। ज्यों ज्यो धन मिलता है त्यो त्यो तृष्णा बढ़ती है। अतः यदि शान्ति चाहते हो तो तृष्णा को संतोष से जीतो। संतोष ही वह अमृत है जो तृष्णा की व्याधि को मिटा सकता है। जहाँ तृष्णा है वहाँ दु ख है और जहाँ संतोष है वहाँ सुख है। धन मे सुख नही है। सुख संतोष में है। कहा है:-

खुश हैं गरीब अपने उन झोपड़ों के अन्दर।
जो धूप की तपिश से दोजख की भट्टियाँ हैं॥
शाकी है अहले दोलत हालां कि उनके घर में;
पंखा भी खिंच रहा है और खस की टट्टियां हैं

यदि संतोष है तो गरीबी में भी स्वर्गीय आनन्द की अनुभूति हो सकती है। संतोष धन का धनी गरीब मजदूर अपने उस

गर्मी से तपते हुए झोपड़े में भी स्वर्गीय सुख का अनुभव करता है। दूसरी तरफ अपार सम्पत्ति है, खस की टट्टियाँ लगी हुई हैं पानी के हौज भरे हुए है, हवादार बंगला है, फिर भी उसमे बैठा हुआ लोभी धनिक तृष्णा की आग से जल रहा है। उसे उस सतुष्ट किसान-मजदूर के समान सुख उपलब्ध नहीं। वह जल रहा है। उसका हृदय धधक रहा है। वहाँ बाहर के साधन शीतल है परन्तु वे बाह्य साधन क्या कर सकते है जब हृदय मे तृष्णा की आग धाँय-धाँय जल रही है। तृष्णा की आग धधक रही हो तो बाह्य शीतलता के ये साधन क्या शांति दे सकते है ? तात्पर्य यह है कि जहाँ तृष्णा है, लालच है, गृद्धि है, वहाँ शांति नही। शांति की निधि तो संतोष है।

हे तृष्णा की तरंगो मे बहने वाले मानवियो ! चाहे जितनी तुम बेईमानी करलो, ब्लेक मार्केट और बेफाम नफाखोरी करलो, झूठे लेख और हिसाब बनालो तुम्हारी तृष्णा इस तरह शान्त न होगी। यह तृष्णा कभी किसी की पूरी नहीं हुई है और न होगी। कहा है :—

रह गये काम जगत् के अधूरे, करने वाले हो गये पूरे
तृष्णा कर कर मर गये शूरे तृष्णा नाहीं मरदी है
रब्ब मिलदा गरीबें वाले दुनिया मान करदी है

मानव धन पाकर अभिमान करने लगता है। धन मिल जाय, मकान मिल जाय, ऐश-इशरत के सामान मिल जाय तो मनुष्य के

पांव जमीन पर नहीं टिकते। वह आसमान की हवा खाने लगता है। वह अपने पहले के साथियो से नफरत करने लगता है। पूर्व परिचितो से बात करने मे, साधारण स्थिति के लोगो से मिलने मे वह अपनी शान में कमी समझता है। वह यह नहीं सोचता कि मै इन गरीबो के पसीने से ही धनवान बना हूँ। धन के नशे मे, अधिकार के घमंड में, कुर्सी की मस्ती मे उसका मन रूपी वायुयान आसमान मे लम्बी उड़ानें भरता है। वह नई दुनिया मे सफर करता है। वह आम-जनता की बात पर गौर करने की तकलीफ नहीं उठाता। शायर कहता है: —

जोशो-खरोश में देखिये खूबी बयान की।
पूछी जमीन की तो बतलाई आसमान की॥

यह कुर्सी, यह सत्ता, यह अधिकार, यह वैभव और यह ऐश्वर्य जिनके बल-बूते पर मिला है उनकी भलाई का विचार न कर अपना मतलब हल करना, सत्ता या धन के आवेश में जनता-जनार्दन की आवाज को ठुकराना, कभी उचित नहीं है। जनता ने ही, गरीब प्रजा ने ही तुम्हें यह सत्ता और वैभव प्रदान किया है। उनके प्रति वफादार रहना तुम्हारा कर्त्तव्य है। यदि ऐसा नहीं होता तो यह गद्दारी है, द्रोह है। याद रखना चाहिये कि परिस्थितियाँ सदा एक-सी नहीं रहती हैं। समय का चक्र घुमता रहता है। चढ़ाव-उतार आता-रहता है। कांटा बदलता रहता है। दुनिया के नक्शे रंग बदलते रहते हैं। सदा एक सी न किसी

की रही और न रहने वाली है। तू किस बाग की मूली है। अभिमान न कर। गरीबों को न सता। कहा है:—

सदा एक जैसा जमाना नहीं है
कि दुखियों को अच्छा सताना नहीं है।
अरे महल वालो! न उनको सताओ
जिन्हें रहने का आसियाना नहीं है॥ सदा एक जैसा.॥
न समझो कि तुम जैसी दुनिया है सारी
है वह भी जो खाने को दाना नहीं है॥ सदा० ॥

हे जरवालो! घर वालो! दर वालो! क्यो जुल्म ढाते हो? क्यों गरीबों को सताते हो? सबको सुख प्यारा है। तुम जैसे सुख की इच्छा करते हो गरीब भी उसी सुख की इच्छा करता है। तुम दूसरे से जैसे व्यवहार की आशा रखते हो दूसरा भी तुमसे वैसी आशा रखता है। इसलिए किसी को दु.ख देना अच्छा नही है।

कांटा किसी के मत लगा गो मिसले गुल फूला है तू,
वह हक में तेरे तीर है किस बात पर भूला है तू।

कुर्सी पर बैठ कर गलत कलम चलाने वालो! सावधान रहो। कलम सही करने के लिए है। उस कलम से किसी के सिर को कलम न करो। झूठे लेख लिखने वालो! झूठे हिसाब बनाने

वालो ! इस तरह किसी को फलते-फूलते नहीं देखा। पुण्य योग से ही धन-वैभव मिलता है बेईमानी और धोखेबाजी से नहीं। अतः सावधान रहो। ज्यादा पाप न करो। जुल्म का नतीजा अच्छा नहीं होता। पाप का घड़ा भर जायगा तो उसे फूटते देर न लगेगी। शायर ने कहा है:—

कह रहा यह आसमां, कुछ समय का फेर है।
पाप का घड़ा भर गया अब फूटने की देर है ॥

झूठी पत्तलें चाटने से भूख मिटने वाली नहीं है। यदि घर की खीर खाने से भूख नहीं मिटी तो दूसरों की झूठी पत्तलों के चाटने से वह कैसे मिट जाएगी ? तुम्हारे पास की सम्पत्ति से तुम्हारी तृष्णा न मिटी तो ब्लेक करने या रिश्वत लेने से वह कैसे शांत हो सकेगी ? झूठी पत्तलें चाटने का काम कुत्तों का है, इन्सान का नहीं। अतः जरा विवेक से काम लो। होश को ठिकाने रखो। समय को पहचानो। धन और सत्ता के अभिमान को तिलाञ्जलि दो। सूर्य की भी दशा स्थिर नहीं रहती। वह भी एक दिन मे तीन दशाएँ भोगता है। तो तुम किस बाग की मूली हो ? प्रातःकाल सूर्य उदित होता है। क्रमशः बढ़ता २ वह अत्यन्त तेजस्वी बन जाता है। खूब तपता है। इतना तपता है कि कोई उसकी तरफ आँख उठा कर नहीं देख सकता। वह खूब तेजी बतलाता है। कोई बुद्धिमान उसे कहता है रे सूरज ! ज्यादा न तप। ज्यादा जोश-खरोश न बतला। देखते २ ढल

जाता है। एक जैसी दशा रहने वाली नहीं है। मध्याह्न में खूब चमक-दमक बताने वाला सूरज सायंकाल को देखते २ अस्त हो जाता है। एक ही दिन में सूरज की तीन हालते हैं। रे मानव ! तो तेरा क्या ठिकाना है ! इसलिए अभिमान न कर। अभिमान के नशे मे गरीबो को न सता। तूने धन पाया है, अधिकार पाया है तो उससे गरीबो का भला कर। गरीबो के आशीर्वाद ले। अपने हृदय को कठोर न बना। करुणा के जल से उसे सजल, स्निग्ध और सरस बना। इससे तेरा उत्थान होगा। भगवती करुणा तुझे ऊँचा उठा देगी।

जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए परम ज्ञानी महापुरुषो ने चार भावनाओ का निरूपण किया है उनमे से मैत्री और कारुण्य भावना के विषय में विवेचन किया है। वैसे तो भगवती करुणा का पूरा २ विवेचन करना बड़े२ दिग्गज विद्वानो की शक्ति से भी परे है। क्योकि करुणा का विराट रूप शब्द-परिधि मे नहीं आ सकता। दया की गरिमा का गान शब्दातीत है। प्रत्येक धर्म मे इसकी महत्ता, विशालता, हितकारिता, कल्याण कारिता और सुखरूपता का प्रतिपादन किया गया है। इसके सम्बन्ध में जैन, सनातन, आर्य सिक्ख, इस्लाम, ईसाई किसी धर्म को विवाद नहीं है। सब का संदेश यही है कि किसी जीव को दुःख न दो। किसी को न सताओ, दुखियों पर दया लाओ।

बन्धुओ ! अध्यात्म की दुनिया अलग है और दुनियावी दुनिया अलग है। अध्यात्म के क्षेत्र में साम्प्रदायिकता को कोई

स्थान नहीं है। धर्म का सम्बन्ध अध्यात्म से है। सम्प्रदाय का सम्बन्ध दुनियादारी से है। धर्म किसी से नफरत करना नहीं सिखलाता। वह धर्म, धर्म ही नही जो प्रेम सूत्र का व्यवच्छेद करता हो, मिलकर न रहने देता हो। धर्म तो बिछुडे हुए को मिलाने वाला होता है मिले हुए को अलग २ कर देने वाला नहीं। अतः साम्प्रदायिक सकीर्णता को छोड़कर धर्म की वास्तविक आत्मा के दर्शन करने का प्रयास करना चाहिए।

भद्रपुरुषो! प्रसंग से मैं यहाँ आम जनता मे फैले हुए एक भ्रम का निवारण कर देना चाहता हूँ। साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण कुछ लोगो की ओर से जैनधर्म पर यह आक्षेप किया जाता है कि जैन धर्म अनीश्वरवादी है। वह ईश्वर को नहीं मानता। अतः वह नास्तिक है। यह आक्षेप सर्वथा निराधार है।

लीजिए इसका समाधान अभी कर दिया जाता है। यहाँ देर का क्या काम ? यहाँ घर मे घाटा नही है। तुरत भुगतान लीजिए। वह साहूकार ही क्या जो भुगतान के वक्त ढील करे। बगले झांकने लगे। भुगतान के वक्त बगलें झांकने वाला दिवालिया होता है साहूकार नही। यदि भुगतान के वक्त थैलियाँ चटाचट गिन दी तो वह साहूकार है। सेठाई भुगतान पर निर्भर है। भुगतान मे रह गये तो रह गये और भुगतान कर दी तो सेठाई बरकरार रहती है। यहाँ घाटे का सौदा नहीं है। नकद भुगतान लीजिए। उधार का काम नहीं।

हाँ, तो विचारना है कि जैन आस्तिक है या नास्तिक। इसके पहले आस्तिक और नास्तिक की परिभाषा पर विचार करना होगा। नास्तिक-आस्तिक की परिभाषा प्रसिद्ध व्याकरण-कार महर्षि पाणिनि (जो जैनधर्मोपासक न थे) ने इस प्रकार की है.—

अस्तीति मतिर्यस्य स आस्तिकः।
नास्तीति मतिर्यस्य स नास्तिकः॥

महर्षि पाणिनि का यह निर्णय पक्षपात रहित है। सुलझी हुई आत्माएँ चाहे जिस धर्म, वर्ण, जाति व समाज मे हो, वे सचाई मे पीछे नहीं रहती है। पाणिनि ने यह निर्णय दिया कि जो ईश्वर, स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप, लोक, परलोक आदि सद्भूत चीजो को सद्रूप से स्वीकार करता है वह आस्तिक है और जो इन सद्भूत चीजो के अस्तित्व से इन्कार करता है वह नास्तिक है। आस्तिक नास्तिक की यह कसौटी है। अब इस कसौटी पर जैनधर्म को कसिये। देखिये, वह खरा उतरता है या नहीं। जैन-धर्म कहता है:—अत्थि लोए, अत्थि अलोए, अत्थि इहलोए, अत्थि परलोए. अत्थि पुण्णे, अत्थि पावे, (लोक है, अलोक है, इहलोक है, परलोक है, पुण्य है, पाप है, आत्मा है, महात्मा है, परमात्मा है, स्वर्ग है, नरक, है।)

जैन यदि परमात्मा को न मानते होते तो हम जैन साधु दुनिया के सुखो को क्यो छोड़ते? ईश्वर के दीवाने बनकर इतनी

कठोर साधना किस लिए करते ? आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए ही तो यह कठोर साधना, जप-तप-संयम आदि करते है। अतः इस भ्रम को दिमाग से दूर कर दीजिए।

जैन धर्म आत्मा की कर्म कलंक से विमुक्त शुद्ध-बुद्ध अवस्था को परमात्मा के रूप मे स्वीकार करता है। आत्मा के विकास की चरम सीमा परमात्म पद प्राप्ति है। परमात्मा शब्द ही इस बात को प्रकट कर रहा है। जो आत्मा उत्तरोत्तर विकास करते हुए पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है वह परमात्मा बन जाता है। परमात्मा शब्द दो शब्दो के योग से बना है। एक शब्द है परम, दूसरा है आत्मा। इससे यही ध्वनि निकलती है कि जो सर्व श्रेष्ठ आत्मा है वही परमात्मा है। परम विकास पर पहुँची हुई आत्माएँ परमात्मा है। आत्मा से ही परमात्मा है।

आत्मा न हो तो परमात्मा कैसा ?
प्रजा न हो तो राजा कैसा ?
चेला न हो तो गुरु कैसा ?
पुत्र न हो तो पिता कैसा ?

आत्मा से ही परमात्मा की प्रतीति है। परमात्मा, आत्म विकास की सर्वोपरि अवस्था है। आत्मा, महात्मा और परमात्मा ये तीन चेतन सत्ता की श्रेणियाँ हैं। सामान्य आत्माओ को महात्मा बनने का प्रयास करना चाहिए और महात्माओ को परमात्मा बनने का पुरुषार्थ करना चाहिए।

बन्धुओ ! समय बहुत हो गया है। यदि सुख शान्ति चाहते हो तो चार भावनाओ का अवलम्बन लो। उन्हे जीवन मे स्थान दो। सब प्राणियो के साथ मित्रता रखो, दु.खियो पर करूणा लाओ। तीसरी भावना है— प्रमोद भावना। गुणीजनो को देख कर हर्षित होना, अच्छी बातो के प्रति हर्ष प्रकट करना, प्रमोद भावना है। ऐसा करने से गुणो और गुणियो को प्रोत्साहन मिलता है। अच्छाई को ताकत मिलती है। बुराई की शक्ति क्षीण होती है। गुणज्ञ पुरुषो के प्रति प्रेमभाव रखने से आत्मा में भी गुणो के प्रति स्पृहा पैदा होती है। गुण-ग्रहण करने के लिए आत्मा को प्रेरणा मिलती है। अतः विकास के लिए प्रमोद भावना की आवश्यकता है। यदि हम दुनिया मे अच्छाई का प्रचार और विस्तार चाहते है तो हमे गुणवानो का कृतज्ञ होना चाहिए। उनका आदर करना चाहिए। उनको देख कर हृदय मे हर्ष उमड़ पडना चाहिए।

गुणी जनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहां तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे॥

यह प्रमोद भावना है।

चौथी भावना मध्यस्थ भावना है। जो व्यक्ति हमसे विपरीत वृत्ति रखता है उसके प्रति भी द्वेष बुद्धि न रखना और उस पर समभाव रखना मध्यस्थ-भावना है। विपरीत व्यवहार करने वाले के प्रति द्वेष भाव सहज ही आ जाता है परन्तु यह आत्मा

को पतित करने वाला होता है। कषायो को प्रज्वलित करने वाला होता है इसलिए आत्मोत्थान के अभिलाषियो को द्वेष न रखते हुए अपने दिल और दिमाग का संतुलन ठीक २ रखना चाहिए। मध्यस्थ-भावना आत्मा को राग द्वेष से बचाती है और परमात्मतत्त्व की ओर ले जाती है।

उपर्युक्त चार भावनाओ का, चार प्रकार की विचार-धाराओ का अवलम्बन लेने से जीवन का उत्थान होता है, आध्यात्मिक जीवन का निर्माण होता है और अन्ततः परिपूर्ण निर्वाण भी हो जाता है। यही परम शान्ति का मार्ग है।

उक्त चार विचार धाराओं का अवलम्बन आध्यात्मिक क्षेत्र मे तो आनन्द देने वाला है ही परन्तु व्यावहारिक क्षेत्र मे और दुनियावी व्यवस्था मे भी शान्ति और सुख प्रदान करने वाला है। व्यावहारिक शान्ति का मूल भी यही है। शान्ति सम्मेलनो के आयोजनो से शान्ति नहीं आएगी। वह आएगी तो इन चार बातो के अवलम्बन से। शान्ति का सक्षिप्त-छोटा सा सूत्र है "सन्तुष्ट रह और संतुष्ट रख"। यही शान्ति का बीज है।

मानव यदि अपनी असीम तृष्णा पर अंकुश लगा ले तो दुनिया से शोषण समाप्त हो जाय और प्रत्येक व्यक्ति को भर पेट भोजन और पहनने को वस्त्र आसानी से उपलब्ध हो सके। जब तक ऐसा नही होता है, जब तक कोई मानव भूखा और नंगा है तब तक शान्ति की आशा नही रखी जा सकती। भूख एक प्रकार की आग है। जब तक यह आग बुझ नहीं जाती तब तक शान्ति को सदैव खतरा है। एक मानव सवेरे से सायंकाल तक

पसीना बहाये और बदले मे भर पेट खाना भी न पा सके तो वह क्या करेगा ? भूखा तो रहा जायगा नही। अतः वह क्रान्ति करेगा, विद्रोह करेगा, चोरी करेगा, डाका डालेगा, लूटेगा। ऐसी हालत मे शान्ति कैसे हो सकेगी ? इसलिए ऐसी समाज व्यवस्था होनी चाहिए जिसमे प्रत्येक व्यक्ति को खाना और पहनने को कपड़ा मिल सके। कोई इन जीवन की जरूरी चीजो से वंचित न रह जाय। ऐसी समाज व्यवस्था भगवान् महावीर के सदेश और उपदेशो से कायम हो सकती है। भगवान् ने पहले ही कहा है कि मानवो! जीवनोपयोगी वस्तुओ का अधिक संग्रह न करो। अपनी आवश्यकताओ को न बढ़ाओ। ऐसा करने से दूसरे व्यक्ति आवश्यक वस्तुओ से वंचित रह जाते है। विपमता फैलती है। यह विपमता सामाजिक-पाप है। अशान्ति का मूल है। इसीलिए भगवान् ने जैन श्रावकों के लिए परिग्रह की मर्यादा करने का विधान किया है और दैनिक उपयोग मे आने वाली वस्तुओ के भोग-उपभोग का परिमाण करने का नियम बतलाया है। यदि प्रामाणिकता से इस नियम का पालन किया जाय तो भूखो के, नंगो के, बेकारो के मसले स्वयमेव ही हल हो जाएँ।

भद्र पुरुषो! श्रीमानो! परिग्रह भयंकर पाप है, अशान्ति का मूल है अत. इस पर नियंत्रण करो। अधिक धन न बढ़ाओ। यह धन खतरे का कारण है। इस खतरे के कारण को ज्यादा बटोरोगे, निकालोगे नहीं तो जीवन को ही ले डूबेगा। छत पर वर्षा का पानी गिरता है और परनाले के द्वारा बह जाता है तो ठीक है। यदि छत पर पानी इकट्ठा हो जाय, परनाले से

वह न निकले तो मकान को खतरा रहता है। जितनी बड़ी छत होती है उतना ही बड़ा परनाला भी चाहिए। छत बड़ी हो और परनाला छोटा हो तो पानी जमा हो जाएगा और छत को ले डूबेगा। श्रीमानो! इसके मतलब को समझो। अधिक धन जमा न करो। इसे शुभ कार्यों में, दरिद्रो की सेवा मे लगाओ तो तुम्हारी और धन की सुरक्षा हो सकेगी। नहीं तो वह खतरे की निशानी है।

यदि आपने मैत्री भावना, करुणा भावना, प्रमोद भावना और मध्यस्थ भावना को अपनाने का प्रयास किया तो आपका जीवन शान्तिमय, सुखमय और कल्याणमय बन सकेगा। उस अवस्था मे आप को किसी का भय न होगा। बन्दूक और पहरे-दार रखने नही पड़ेगे। सारी दुनिया आपको मित्र समझेगी जब आप सब को मित्र की भावना से देखेंगे। ये भावनाएँ आत्मा को महात्मा और परमात्मा बनाने वाली है। इनका अवलम्बन इहलोक और परलोक मे कल्याणकारी है। इनका अवलम्बन लीजिए, प्रभु का भजन कीजिए, दीन दुखियो को शान्ति दीजिए। जो प्रभु का भजन करते हे, वे जीवन को उन्नत बनाते है और अत्र तत्र सर्वत्र आनन्द ही आनन्द पाते हैं।

सुबह शाम जिसको तेरा ध्यान होगा,
बड़ा भाग्यशाली वह इन्सान होगा।

आश्विन शु० १५
ता० ३-१०-५२

६

सुख की शोध में

उपस्थित सज्जनो और सन्नारियो !

विश्व के समस्त प्राणी सुख के अभिलाषी और गवेषी है। क्या सूक्ष्म, क्या स्थूल, क्या स्थावर, क्या जंगम, सारे चराचर प्राणी सुख चाहते है। सब प्राणियो के हृदय में सुख-प्राप्ति की प्रबल उत्कंठा है। सुख के लिए ही प्राणि-जगत् के सारे प्रयास और प्रयत्न है। एक ही ध्येय को लेकर सब लोग और प्राणी-समुदाय कार्य-संलग्न हैं। प्राणियो की सर्व प्रवृत्तियो के मूल में एक ही कामना, एक ही भावना काम कर रही है वह है सुख की चाह।

इस बात में किसी व्यक्ति, जाति या समाज का मतभेद नही है। यह सर्व सम्मत और निर्विवाद सत्य है। संसार मे जो कुछ किया जा रहा है उसकी तह मे जाइए, उसकी अन्तरात्मा का अवलोकन कीजिए आपको एक ही चीज मिलेगी—सुख की झंखना, सुख की तडफ, सुख की तीव्र उत्कंठा। यदि प्राणि-जगत् के सामने सुख का प्रश्न न होता तो कोई कर्मशील, उद्योगी और कार्य-रत नहीं होता। बस, जिधर देखिये उधर सुख की ही चाह है। क्या धनी क्या निर्धन, क्या विद्वान्, क्या मूर्ख, क्या पंडित क्या मौलवी, क्या हिन्दु क्या मुसलमान, क्या योगी क्या भोगी, क्या स्त्री, क्या इन्सान, क्या हैवान, क्या देव क्या दानव, क्या इन्द्र और क्या इन्द्रगोप (छोटा सा कीडा) सब सुख के इच्छुक है, सुखाभिलाषी है, सुख के लिए प्रयत्नशील है।

यह सुख कहाँ छिपा है जिसकी शोध मे सारे प्राणी विह्वल हो रहे है? सुख की उपलब्धि कहाँ से होनी है? सुख कहाॅ रहता है? उसे कहाॅ ढूॅढा जाय? सुख वन मे है या भवन में है? वह नगर की डगरो मे है या वन की वीथियो मे है? वह गिरिकन्दराओ मे है या ऊॅची २ अट्टालिकाओ मे हैं? वह आकाश में है या पाताल में है? वह पर्वतो के ऊॅचे २ शिखरो पर है या अनन्त सागर की अथाह गहराई मे छिपा पड़ा है? कहाँ है सुख? सुख के अभिलाषी मानव ने सुख की आशा से वन-वन छान डाला, नगर की गली गली में चक्कर लगाया, पसीना बहाकर ऊँचे २ पर्वतों की चोटियो पर उड़ान भरी, समुद्र

का थाह लिया, सात समुद्र-पार विदेशों की यात्रा की, पृथ्वी का कण-कण, अणु-अणु देख लिया परन्तु कहीं सुख की उपलब्धि नहीं हुई। आखिर, यह सब का साध्य, सब का आराध्य सुख कहाँ रहता है ?

यह बड़ा गूढ़ प्रश्न है। बड़ी जटिल समस्या है। उलझी हुई गुत्थी है। परन्तु घबराइये नहीं, उलझन मे पड़िये नहीं, निराश और हतोत्साह बनिये नहीं। महापुरुषों ने अपनी दीर्घ साधना के बल पर जो अलौकिक प्रकाश प्राप्त किया, जो दिव्य ज्ञान-केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त किया उससे उन्होंने इस उलझी हुई गुत्थी का, इस गूढ प्रश्न का, इस जटिल समस्या का बड़ा सुगम हल बतला दिया है। यह उलझी हुई गुत्थी उन्होंने सुलझा दी है। सुख की शोध मे इधर-उधर दौड़-धूम करने वाले प्राणियो पर अनुकम्पा लाकर उन्होंने उद्घोषणा की कि—

हे सुखाभिलाषियो ! सुख को कहाँ ढूंढ रहे हो ? वह वन मे या भवन मे नहीं है। वह पहाड़ की गुफाओ मे या उन्नत शिखरो मे या समुद्र की अतल गहराई मे छिपा हुआ नहीं है। वह धन मे, धाम में, काम मे, आराम मे, उद्यान में नहीं है। वह बाहर की वस्तु नहीं है। बाहर भटकने से वह मिलने वाली नहीं है। पृथ्वी का कोना कोना छान डालो, समुद्र के तल मे चले जाओ, पहाड़ो की चोटियो को लाघ डालो, आसमान मे चले जाओ पाताल मे चले जाओ, बाहर वह सुख मिलने वाला नहीं है। क्यो इधर-उधर भटकते हो, क्यो हैरान और परेशान होते

हो ? यह निरर्थक प्रयास छोड़ो। बाहर कहीं न भटको अपने आप को टटोलो, अपने अन्दर देखो। तुम्हे वहाँ सुख का सागर लहराता हुआ दिखाई देगा। तुम्हारा आराध्य, तुम्हारा साध्य तुम्हें वही प्राप्त होगा। जो चीज़ जहाँ है वही ढूँढने से वह मिल सकती है। जो जहाँ नहीं है वहाँ एक बार नही करोड़ बार, एक नहीं करोड़ो वर्षों तक ढूँढते रहो कभी मिलने वाली नहीं है। सुख बाहर की चीज़ नही है। वह आत्मा की निधि है, आत्मा की विभूति है और आत्मा की सम्पत्ति है। अतः सुख चाहते हो तो उसे अपने अन्दर खोजो, अपने अन्दर गोते लगाओ, आत्म-दर्शन करो। तुम्हे सुख का साक्षात्कार होगा। मूर्तिमान सुख तुम्हारी आंखो के सामने खड़ा होगा। बाहर न भटको, औंधे न लटको, आत्मदर्शन करो। सुख के दर्शन स्वयमेव हो जाएँगे।"

बन्धुओ ! महापुरुषो की इस उद्घोषणा से हुआ आपका समाधान ? मिला सुख का स्थान ? सफल हुए अरमान ? नहीं, अभी बराबर समझ मे नहीं आया। अभी शंका पैदा होती है कि यदि सुख अपने पास ही होता तो सब प्राणी स्वयमेव सुखी हो जाते। उन्हे सुख की शोध करने का परिश्रम क्यो करना पड़ रहा है? हम देखते हैं कि प्राणी नाना प्रकार के दुःख भोग रहे है, पीडित हो रहे हैं, कराह रहे हैं, फिर यह कैसे माना जाय कि सुख आत्मा मे है ? अपने पास सुख का खजाना हो तो फिर दुखी कौन होगा ? क्यो होगा ? इसलिए आत्मा, सुख की निधि है यह बात समझ मे नही आती।

शंकाकार की शंका ठीक ही है कि पास मे सुख का खजाना है तो प्राणी दु ख का अनुभव क्यो कर रहे है। परन्तु बात यह है कि आत्मा में सुख का खजाना, सुख की अमूल्य निधि, छिपी पडी है उसका इन अबोध प्राणियो को पता नहीं है इसलिए निधि के स्वामी होने पर भी ये अपने आपको निर्धन मान कर दुःखी हो रहे है और अन्य कहीं से वह निधि प्राप्त करने की आशा से दौड़-धाम कर रहे है। निधि घर में गड़ी हो परन्तु उसका ज्ञान न हो, वह व्यक्त न हो तो प्राणी अपने आपको निर्धन मानता है और दुनिया भी उसे निर्धन मानती है। परन्तु जब वह निधि प्रकट हो जाती है या उस व्यक्ति को छिपी हुई निधि का पता चल जाता है तब वह मालामाल हो जाता है, निहाल हो जाता है, खुशहाल हो जाता है। कहिये वह निधि कहाँ से आई ? कहीं बाहर से आई ? उसे किसी दूसरे ने दे दी ? नहीं; वह निधि उसकी ही थी, उसके ही अधिकार की थी, उसका स्वामी वही था परन्तु पहले उसे इसका भान नही था अतः दुखी बन रहा था; अब उसे अपनी छिपी निधि का पता चल गया अतः वह धनी बन गया, सुखी बन गया। वह निधि पहले भी उसकी थी, और अब भी उसकी है। पहले वह छिपी हुई थी और अब व्यक्त है परन्तु निधि तो उसकी ही थी और है। उस छिपी हुई निधि का स्वामी वह स्वयं था परन्तु उसे भान न था। इसी तरह आत्मा में सुख का खजाना छिपा पड़ा है। उस छिपे हुए खजाने का स्वामी आत्मा है परन्तु उस आत्माराम को यह पता नहीं है कि मै इस अनमोल निधि का स्वामी हूं इसलिए वह अपने

आपको दीन-हीन, निर्बल और कमजोर मान रहा है, दुखी मान रहा है और सुख की तलाश मे बाहर भटक रहा है। जिस दिन आत्माराम को अपनी छिपी निधि का पता चल जाएगा उसे वह फिर बाहर प्रकट कर के ही रहेगा। जिस व्यक्ति को पता चल जाय कि उसके मकान मे अमुक जगह धन गड़ा है तो वह चुप-चाप नहीं बैठा रहेगा वह तत्काल कुदाली से खोद कर मिट्टी अलग कर देगा और धन प्राप्त कर लेगा। तात्पर्य यह है कि आत्मा मे सुख रहा हुआ है, सुख आत्मा की सम्पत्ति और विभूति है परन्तु जीवो को इसका भान नही है इसीलिए वे अपने को दु:खी महसूस कर रहे है और सुख की तलाश मे इधर-उधर भटक रहे है। वस्तुतः सुख का स्रोत आत्मा मे ही प्रवाहित हो रहा है। सुख को उद्भव आत्मा ही है। सुख आत्मा की विभूति है, निज की सम्पत्ति है, अपनी निधि है।

सुख आत्मा की निजी सम्पत्ति है इसीलिए तो उसकी ओर प्राणी-मात्र की अभिरुचि है, बहाव और लगाव है। अपनी चीज की ओर जो झुकाव एवं लगाव अनायास ही हो जाता है वह दूसरो की चीज के प्रति नहीं होता। आपको अपनी दुकान के प्रति जैसी अभिरुचि है, जैसा लगाव और झुकाव है वैसा पड़ौसी की दुकान के प्रति नही है। थोड़ी देर के लिए अपनी मान ली गई दुकान के प्रति ऐसी तीव्र अभिरुचि है तो जो चीज सदा अपनी थी, है और रहेगी उसके प्रति अभिरुचि होना तो स्वाभाविक है। प्राणियो की सुख के प्रति होनेवाली सहज अभिरुचि

ही इस बात का प्रमाण है कि सुख आत्मा की वस्तु है, आत्मा की निधि है, आत्मा की सम्पत्ति और विभूति है।

शंका होती है कि सुख यदि आत्मा का गुण है तो आत्मा की तरह वह नित्य होना चाहिए। गुणी नित्य है तो उसका गुण भी नित्य होता है क्योंकि गुण-गुणी मे तादात्म्य सम्बन्ध होता है। सुख गुण है आत्मा गुणी है तो नित्य आत्मा मे सुख भी नित्य होना चाहिए। परन्तु आत्मा में नित्य सुख की प्रतीति नहीं होती अत: सुख को आत्मा की निधि, आत्मा का गुण कैसे माना जा सकता है?

इसका समाधान यह है कि द्रव्यापेक्षया नित्य आत्मा मे उसके गुण भी नित्य ही रहते है। आत्मा के गुण ज्ञान, दर्शन, सुख, बल-वीर्य आत्मा मे सदा बने रहते है। यदि ऐसा न हो तो आत्मा आत्मा न रह कर जड़ बन जाय। परन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ और कभी नहीं होगा कि आत्मा जड़ बन जाय। चेतन चेतन ही रहेगा, जड़ जड़ ही रहेगा। यह स्वयसिद्ध सत्य है। अतएव प्रत्येक आत्मा में ज्ञान-दर्शन सुख और बलवीर्य की सत्ता अवश्यमेव है। यह बात अलग है कि पर-परणति के कारण आत्मिक गुणो पर आवरण पड़ा हुआ है। वह आवरण जितना गाढ होता है उसी प्रमाण मे वह ज्ञानादि गुण ढके रहते हैं अतएव उनकी तरतमता देखी जाती है परन्तु यह निश्चित है कि प्रत्येक आत्मा मे ज्ञान-दर्शन-सुख और बलवीर्य की न्यूनाधिक मात्रा अवश्यमेव अबाधित रूप से विद्यमान है।

आत्मा में सुख है तदपि वह स्पष्ट प्रतीत नहीं होता, इसक कारण किसी दूसरी चीज का प्रबल प्रभाव है। जल मे शीतलत देने का स्वाभाविक गुण है। गर्मी से तपे हुए व्यक्ति को जल अवश्य शीतलता देता है। ग्रीष्मऋतु की गर्मी से सताया हुआ प्राणी ठंडे जल मे बैठता है तो उसे शान्ति मिलती है। कोई व्यक्ति ठंडे जल मे बैठा है फिर भी वह कहता है कि मैं गर्मी के मारे मरा जा रहा हूँ, तड़फ रहा हूँ। यदि जल मे बैठा हुआ भी वह गर्मी से संतप्त है तो क्या जल ने उसे शीतलता नहीं दी? क्या जल मे पक्षपात है कि वह किसी को शीतलता दे और किसी को नही दे? नही,ऐसा नहीं है। मनुष्य के व्यवहार में पक्ष पात हो सकता है, द्वैत भावना हो सकती है परन्तु प्राकृतिक चीजो मे ऐसा पक्ष-पात नहीं होता। प्राकृतिक वैभव व्यक्ति के लिए नहीं समष्टि के लिए होता है। उस पर किसी व्यक्ति, जाति, वर्ण या समाज विशेष का अधिकार नहीं हो सकता। प्रकृति का वैभव सबके लिए है। प्रकृति माता को किसी पर पक्षपात नही। उसका सब-कुछ सब के लिए है। यदि ऐसा न हो तो दुनिया तबाह हो जाय। प्राणियो का जिन्दा रहना दूभर हो जाय। पानी में यदि पक्षपात आ जाय कि अमुक की प्यास बुझानी है अमुक की नही, अमुक को शीतलता देनी है अमुक को नहीं तो कहिये काम चल सकेगा? नहीं। प्राकृतिक चीजो में यह द्वैत भावना नहीं है। वे सब के लिए होती हैं। पानी, हवा, प्रकाश आदि पर किसी व्यक्ति या जाति विशेष का आधिपत्य नहीं हो सकता। यदि इन जीवनोपयोगी चीजो में द्वैतता-दुई-पक्षपात आ जाय तो अनर्थ

हो जाय। प्रकृति जन्य चीजो मे ऐसी द्वैतबुद्धि नही हो सकती। वे सबके लिए एक सी होती है। हवा सबके लिए है, रोशनी सबके लिए है, पानी सबके लिए है। भद्रपुरुषो ! पानी मे पक्षपात नही है। जो उसे पीएगा उसकी प्यास को वह शांत करेगा चाहे वह पीने वाला किसी भी जाति, वर्ण या समाज का हो, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, चरिन्दा हो या परिन्दा। ऐसी स्थिति मे क्या बात है कि एक व्यक्ति ने जल मे प्रवेश किया तो उसे शीतलता मिली और दूसरे एक व्यक्ति ने जल मे प्रवेश किया फिर भी वह गर्मी से संतप्त हो रहा है ? बात यह है कि उस दूसरे व्यक्ति ने संखिया खाकर जल मे प्रवेश किया है। जल तो दोनो व्यक्तियो को समान शीतलता दे रहा है परन्तु दूसरे व्यक्ति का खाया हुआ संखिया प्रबल गर्मी पैदा कर रहा है। इसमे जल का क्या दोष ? संखिया खाने वाले की गर्मी नहीं मिटी क्या इससे यह कहा जा सकता है कि जल में शीतलता नहीं है ? जल में गोते लगाने पर भी यदि शीतलता नही मिलती तो यह जल का दोष नही। यह संखिया का असर है। पानी अपना काम कर रहा है, विष अपना काम कर रहा है। सीधी सी बात है कि पानी उसे शीतलता दे रहा है परन्तु उसका खाया हुआ संखिया इतना प्रबल असर बता रहा है कि जल की शीतलता का अनुभव नहीं होता।

ठीक इसी तरह आत्मा मे ज्ञान, दर्शन, बल-वीर्य और सुख का अक्षय निधान है परन्तु उसी जीव आत्मा ने विभाव-परिणत होकर काम-क्रोध, मोह, मत्सर, लोभ लालच रूप संखिया

खा लिया है इसलिए उसका विष अपना प्रभाव डाल रहा है जिसके कारण उस जीवात्मा को अपने आत्मीय सुख की प्रतीति और अनुभव नहीं होता। जैसे जल मे शीतलता सहज है और वह प्रत्येक को शीतलता देता है इसी तरह आत्मा मे ज्ञान और सुख सहज रूप मे विद्यमान हैं परन्तु जैसे विष खाने पर जल की शीतलता का अनुभव नही होता इसी तरह पुद्गलो के वश पड़े हुए विभावापन्न आत्मा को अपने सहज सुख की अनुभूति नही है। परन्तु आत्मा मे सहज सुख है यह तो उसी तरह सिद्ध है जैसे जल मे शीतलता।

चार बालक खेल रहे हो और उधर से उनमे से एक बालक का पिता आ निकलता है तो बच्चे का ध्यान अपने पिता की ओर और पिता का ध्यान अपने पुत्र की ओर स्वाभाविक रूप से आकृष्ट हो जाता है। एक दूसरे के प्रति उनका लगाव एवं झुकाव सहज रूप से हो जाता है। इसका कारण उनका सबध रिश्ता है। जिसका जिसके प्रति सहज झुकाव होता है उसका उसके साथ सम्बन्ध होता है। आत्मा का झुकाव, लगाव, चाव सहज ही सुख के प्रति है इससे साबित होता है कि सुख का सम्बन्ध आत्मा के साथ है। सुख आत्मा की निधि है, आत्मा की सम्पत्ति है, आत्मा की विभूति है।

आत्मा को अपने सुख की प्रतीति नहीं होती, अनुभूति नहीं होती इसका कारण आत्मा मे सुख का न होना नहीं है अपितु आत्मा की विभाव दशा ही इसका मुख्य हेतु है। काम

क्रोध, मद, लोभ, राग, द्वेष, ईर्षा आदि विभाव का विष खाकर प्राणी प्रभु भजन रूप पानी में प्रवेश करते है तो उन्हे शाति कैसे मिल सकती है ? प्रभु-भजन मे शान्ति देने की शक्ति है परन्तु विष की पुड़िया का असर हटाये विना शान्ति नहीं मिल सकती है। जब संखिया के विष का असर हट जायगा तो उसे जल की शीतलता का अनुभव होने लगेगा। इसी तरह काम, क्रोध, राग, द्वेषादि विष का असर कम होगा तब प्रभु-भजन रूपी पानी की शीतलता का अनुभव हो सकेगा। जब तक जहर का असर है तब तक शान्ति की अनुभूति नहीं हो सकती। शान्ति का आनंद लेना है तो इस जहर की पुड़िया को, विष की पोटली को दूर रखना होगा। जहर का असर हटा कर यदि आत्मा मे गोते लगाओगे तो आपको शान्ति की अनुभूति अवश्यमेव होगी। इसमें कोई संदेह और सशय नहीं है। आत्मा मे सुख का सरोवर लहरा रहा है। यदि आप अपने दुःख रूपी उष्णता का अंत करना चाहते है तो विभाव के विष को, अनात्मभाव के विष को दूर करदो और आत्म सरोवर मे अवगाहन करो। आप शीतीभूत हो जाएँगे। सारी गर्मी, आकुलता-व्याकुलता, आधि, व्याधि और उपाधि नष्ट हो जायगी। आपको वास्तविक सुख का साक्षात्कार हो जायगा।

बन्धुओ ! आत्मा की उस अतुल सुख-निधि को पाने के लिए आपको विशेष कुछ नही करता है। आपको सोना नही बनाना है। वह तो स्वभावतः बना हुआ है। केवल उसमे मिली

हुई मिट्टी को अलग कर देना है। आपको सोना बनाना नहीं किन्तु उसको निखारना है। इसी तरह आपको आत्मा में सुख का नव-निर्माण करने की आवश्यकता नहीं है। वह सुख तो वहाँ सहज है ही। केवल उसमे अनात्म-भाव का, राग-द्वेष का, पुद्गल का मिश्रण हो गया है। उस विकारी तत्त्व को निकाल फेंकने की आवश्यकता है। उसके निकलते ही आत्मा का सच्चिदानन्द स्वरूप स्वयमेव प्रकट हो जाता है। वह आत्मा अपने मूल रूप मे आ जाता है।

भद्र पुरुषो ! सुख चाहते हो तो सुख के काम करो। चाहते हो सुख और काम करते हो दुःख के तो यह मेल कैसे बैठ सकता है ? कोई पहले ही गर्मी से तप रहा है। गर्मी शान्त करने की उसकी भावना और कामना है परन्तु वह जाकर धूप मे बैठ जाय, या गरम-गरम रेत मे जा बैठे तो कहिये उसे शान्ति मिलेगी ? नही। वह रेत स्वयं तप रही है तो दूसरे को शान्ति कैसे दे सकेगा ? कोई वज्रमूर्ख चाहता है गर्मी को शान्त करना और जाता है आग के पास। क्या वह शान्ति पा सकेगा ? नहीं। यह विपरीत रास्ता है। सिर नीचा और पैर ऊपर इस तरह मंजिल तै नही हो सकती। यदि उसे शान्ति की भावना और कामना है, यदि वह शान्ति की चाह करता है तो उसके लिए राह यह है कि वह किसी सघन हरे-भरे वृक्ष की शीतल छाया का आश्रय ले। पानी के किनारे जाकर ठंडी लहरो के स्पर्श का अनुभव करे। परन्तु ध्यान रखना होगा कि कहीं बुखार चढ़ा हुआ

न हो। बुखार की दशा में जल मे प्रवेश करेगा तो हानि उठा-एगा। वह उस हानि के लिए जल को दोप का भागी बताएगा परन्तु उसमें जल का दोष नही है। विष खाकर पानी मे प्रवेश करोगे और विषयो की विष-पुडिया लेकर भगवद् वाणी में उतरोगे तो व्यर्थ ही पानी और वाणी को दोष दोगे। इसमे पानी और वाणी का दोप नहीं होगा। दोष होगा उस कातिल विष का। अतः सावधान रहने की आवश्यकता है।

आज का मानव सुख की शोध मे विपरीत दिशा में बेतहाश भागा जा रहा है। वह गर्मी से संतप्त बना हुआ शान्ति की शोध मे गरम बालू रेत की तरफ जा रहा है। एटम बम, जहरीली गैस आदि विध्वंसक शास्त्रास्त्रो का निर्माण किया जा रहा है और उनसे शान्ति तथा सुख की मिथ्या आशा की जा रही है। जो विनाश के साधन है उनसे शान्ति कहाँ से मिल सकती है? साँप के मुख से अमृत कैसे पाया जा सकता है? जो शस्त्रास्त्र विनाश करने वाले हैं उनसे विकास, सुख-शान्ति का प्रकाश कैसे मिल सकता है? परन्तु मानव पर भौतिकवाद का, जड़वाद का नशा चढ़ा हुआ है अतः वह दिग्मूढ बन रहा है, पथ भ्रष्ट हो रहा है और गलत मार्ग पर जी-जान से दौड़ा जा रहा है। परिणाम यह हो रहा है कि शान्ति के स्थान पर उत्तरोत्तर अशान्ति फैलती जा रही है। दुनिया का वातावरण दिनो दिन अशान्ति के बादलो से घिरता जा रहा है।

विश्व वैसे ही भौतिक पदार्थों की कामना से संतप्त है और फिर भौतिक पदार्थों से ही वह शान्ति पाना चाह रहा है, यह कैसे हो सकता है ? आग आग से कैसे शान्त हो सकती है ? गर्मी से संतप्त मानव बालू रेत से शान्ति कैसे पा सकता है ? यदि गर्मी को दूर करना है तो किसी सघन वृक्ष की छाया का आश्रय लेना होगा। वह हरा-भरा वृक्ष ही उसे शान्ति देने मे समर्थ है। जो वृक्ष सूखा हो, बेजान हो बेभान हो, जड़ हो वह दूसरे को शीतलता नही दे सकता। जो वृक्ष स्वयं हरा-भरा हो, सघन हो, फला-फूला हो वही दूसरे की गर्मी को दूर कर शीतल छाया दे सकता है। हरे-भरे फले-फूले वृक्ष के नीचे जो कोई जाता है चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो, जैन हो, धनी हो निर्धन हो, चरिन्दा हो, परिन्दा हो, वह सब को छाया देता है। वह पथिकों को आह्वान करता है कि शीतल छाया चाहते हो तो आओ। मेरे तले आश्रय लो। वह वृक्ष चाहे जिसकी जमीन में हो, चाहे जिसके खेत मे हो परन्तु जो कोई उसके नीचे जाएगा उसको वह शीतल छाया अवश्य प्रदान करेगा। वृक्ष सूखा है, पत्र-पुष्प हीन है तो वह चाहे जिस हिन्दु, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, जैन, बौद्ध, आर्य की जमीन में हो छाया नहीं दे सकेगा। सूखे वृक्ष के नीचे जाने से न हिन्दु को, न जैन को, न सनातन को, न मुसलमान को शान्ति मिलेगी। सरसब्ज वृक्ष चाहे जिसके स्थान मे हो वह शीतल छाया देगा और उस प्रत्येक व्यक्ति को देगा जो उसका आश्रय लेगा।

सुख की शोध में

दुनिया मे दो प्रकार की शक्तियां है। एक चेतन शक्ति और दूसरी जड शक्ति। प्रथम शक्ति को आत्मा, रूह, जीव, Soul कहते है। दूसरी शक्ति को पुद्गल, प्रकृति माया या Matter कहते हैं। जो जानदार है, जिनमे ज्ञान, भान और ध्यान हैं वे चेतन हैं। आत्मा, महात्मा और परमात्मा चेतन शक्ति के रूप है। खाने पीने छूने, सूंघने, देखने-सुनने की जितनी चीजे है वे जड़ हैं। चेतन हरा-भरा वृक्ष है और जड़ सूखा वृक्ष है। सुख चाहते हो, शान्ति चाहते हो तो इस चेतनमय हरे वृक्ष का आश्रय लो। पुद्गलमय सूखे वृक्ष से शान्ति और सुख नही मिलने वाला है। इस पुद्गलमय सूखे वृक्ष को चाहे जितना सींचो इसके फल-फूल नहीं लग सकते। इन्द्रियो के विषय पोषण से सुख चाहते हो परन्तु आज तक इनसे किसी ने सुख नहीं पाया। इन्द्रिय जन्य सुखाभास मे सुख-शान्ति होती तो भगवान् महावीर और बुद्ध राजपाट को लात मारकर वन की राह क्यो लेते? हजारो राजा महाराजाओ ने राज्य का परित्याग कर, भोगमय जीवन को छोड़कर योग का मार्ग क्यो अंगीकार किया ? उनके महलों में धन और पौद्गलिक सुख साधनो की कमी न थी परन्तु उन्हे उनमे सुख-शान्ति की झांकी न मिली अतः राजलक्ष्मी को तृण की तरह ठुकरा कर वे नरसिंह योग के मार्ग पर चल पड़े। उन्हे वहाँ शान्ति और सुख के दर्शन हुए। भोग में सुख नही, योग मे सुख है। भोग बाहर की वस्तु है, योग आत्मा की चीज़ है। बाहर की चीज़ मे दूसरे की चीज मे सुख नही होता। अपनी चीज़ मे सुख होता है।

दुनिया के लोगो ! तेजाब भी तरल पदार्थ है, मिट्टी का तेल और पेट्रोल भी तरल पदार्थ है और दूसरी तरफ पानी भी तरल पदार्थ है। प्यास लगने पर पेट्रोल या मिट्टी के तेल को पानी समझकर यदि पी लिया जाय तो कहिये क्या हाल हो ! प्यास बुझाना तो दूर रहा वह उल्टा मार देगा। प्यास बुझाने की शक्ति पानी मे है। पेट्रोल या तेल में नही। दुनिया के लोग पेट्रोल से प्यास बुझाने का यत्न कर रहे है यही अचरज की बात है। पुद्गल रूपी पेट्रोल कभी शान्ति की प्यास को शान्त नहीं कर सकता। मायावी पौद्गलिक धनधाम से सुख नही मिल सकता। रंग नुमाइश और तड़क-भड़क में मत रिझो। इन सूखे वृक्षो से मीठे फल नही मिल सकते। सूखे वृक्षो से मीठे फल और शीतल छाया मिल सकती होती तो हरे-भरे वृक्षो की कौन परवाह करता, कौन उन्हे सींचता कौन उनकी वाडादि से रक्षा करता ? हरे-भरे वृक्षों से मीठे फल व शीतल छाया मिलेगी सूखे वृक्षों से नहीं। अतः जड चीजो के सूखे वृक्षो से मीठे फल की आशा छोडो और हरे-भरे वृक्षों से सम्बन्ध जोड़ो तभी सुख-शान्ति के दर्शन हो सकेगे। सच्चिदानन्दमय आत्मा ही वह हरा-भरा वृक्ष है जिसकी शीतल छाया सारे सताप को नष्ट कर देती है। उसी सच्चिदानन्दमय आत्मा—परमात्मा का आश्रय लीजिए, शरण लीजिए फिर सुख ही सुख है।

वह सच्चिदानन्दमय परमात्मा सर्वत्र है। उसे कहीं ढूंढने की आवश्यकता नहीं। वह है तो सर्वत्र है नहीं तो कहीं भी नही है।

कौनसी जा है जहाँ जलव-ए माशूक़ नहीं।
शौक दीदार का है तो नज़र पैदा कर॥

और भी कहा है:—

अपने अपने मत की कोई नहीं चाहता हानि।
जब ईश्वर सर्व व्यापक है तो क्यों है खींचातानी॥

आज ईश्वर के नाम पर धर्म के नाम पर बडी अंधाधुंधी मची हुई है। आडम्बर–मान पूजा के भूखे, स्वार्थी और पाखण्डी लोगो ने धर्म को अखाड़ा बना रखा है। वे भोली जनता की भावनाओ को गलत रूप मे उभारते हैं। उन्होने धर्म जैसी व्यापक वस्तु को साम्प्रदायिक जनून का रूप दे दिया है। इस साम्प्रदायिक जनून ने, फिरकापरस्तीने, कुछ लोगो के मस्तिष्क के विकार ने इस देश के टुकड़े करा दिये। देश की खुश हाली को बर्बाद कर दिया। लाखो लाड़ले लाल अपनी मां से बिछुड़ गये। लाखो घर-बार उजड़ गये। लाखो व्यक्ति-स्त्री-पुरुष, बालक वृद्ध निर्दयता और निर्ममता से मार दिये गये। कुछ लोगो के दिमाग में फितूर उठा कि हम दो भाई एक साथ इस घर में नही रह सकते। आखिर क्यो नहीं रह सकते? हजारो वर्षों से साथ रहते आये है। गांवो में आज भी हिन्दु-मुसलमान बड़े भाई चारे के साथ एक साथ रहते हैं। एक दूसरे के सुख दुःख मे काम आते है। यह मजहवी जनून चंद लोगों ने थोड़े से शहरियो ने अपने स्वार्थ के खातिर पैदा किया उसका कडुआ परिणाम सारे देश

को भोगना पड़ा। इस नक़ली जनून ने धर्म को, ईश्वर को कलंक लगाया। वस्तुतः, धर्म और ईश्वर कुछ और चीज़ है। जनून और पाखण्ड का नाम धर्म नहीं है। धर्म और ईश्वर तो त्रिकाल और त्रिलोक मे एक सा कल्याणकर होता है। वह कभी अकल्याण और अहित का कारण नही हो सकता। खुदगरज और स्वार्थी इन्सान इन पवित्र चीज़ो की ओट मे अपना उल्लू सीधा करता है। इसमें इनका दोष नहीं। दोष है इन्सान की हैवानियत का।

हाँ, तो शायर कहता है कि वह सच्चिदानन्द मय आत्मा-परमात्मा सब जगह है। यदि उसे देखने का शौक़ है तो नजर पैदा करो। आँखो पर जो पर्दा आ गया है– जो मोतियाबिन्दु आ गया है उसका ऑपरेशन करवालो। ऑपरेशन करवाने के पहले देख लेना जरूरी है कि ऑपरेशन करने वाले डाक्टर को भी दिखता है या नही ? डाक्टरी करने का अधिकार भी उसे ही है जिसे पूरा दिखता हो, जो बराबर सुन सकता हो, जिसके हाथ काँपते न हो। जिसका हाथ काँपता है या जिसे कम दिखाई-सुनाई पड़ता है वह डाक्टर नही बन सकता। डाक्टर का काम बड़ा नाजुक है। उसके हाथ मे जीवन मरण का सवाल है। उस पर बड़ा दायित्व है। अतः किसी कुशल डाक्टर से आँख का ऑपरेशन कराने से दृष्टि पैदा होगी। उस ईश्वर के साक्षात्कार के लिए ये चमड़े की बाहरी आँखें काम नही आएगी उस निराकार परमात्मा के दर्शन के लिए भीतरी आँखें-हृदय-नेत्र खोलने पड़ेंगे। हृदय-नेत्रो पर यदि पर्दा या मोतियाबिन्दु

पड़ गया है तो किसी पहुँचे हुए फकीर से- सन्त महात्मा से- ज्ञानीगुरु से ऑपरेशन कराना होगा। उन ज्ञानीगुरु के संसर्ग से जब हृदय-नेत्र खुल जाएँगे तब परमात्मा के दर्शन हो जाएँगे। तब आत्मा में सुख की अनन्त-अक्षय, अव्याबाध निधि प्रकट हो जाएगी। क्योंकि वह आत्मिक सुखो की निधि और वह सच्चिदानन्द मय परमात्मा सब जगह है। कहा है:—

कौनसी जमीन है जहां पानी नहीं है।
कहीं दूर है कहीं हजूर है॥

ऐसी कोई जमीन नही है जिसकी तह में पानी न हो। जमीन में सब जगह पानी है। परन्तु इतना अवश्य है कि किसी जमीन मे पानी नजदीक होता है और कहीं दूर होता है। बीकानेर जैसे क्षेत्र मे पानी बहुत नीचे होता है। वहाँ बड़े गहरे कुएँ होते है। कहीं सर सब्ज प्रदेश मे पानी ऊपर होता है। दस बीस हाथ जमीन खोदते ही पानी ही पानी निकल आता है। मतलब यह है कि जमीन मे पानी सब जगह है। कहीं नजदीक है, कहीं दूर है। इसी तरह जिस इन्सान के हृदय में दया के, रहमदिली के, करुणा के झरने बह रहे हैं, दुखियो के लिए जिसके दिल मे दया के फव्वारे छूट रहे है, जिसकी हृदय-भूमि दया से स्निग्ध है उसके लिए परमात्मा रूपी पानी नजदीक है। उसमे से पानी निकालने के लिए रस्सी की जरुरत नही। कहीं आने-जाने की, कष्ट उठाने की जरुरत नही। जहाँ नहर आ जाती है वह प्रदेश

सर सब्ज बन जाता है, धन-धान्य से समृद्ध हो जाता है और खुशहाल हो जाता है। इसके विपरीत जिनका हृदय सूखा है शुष्क है, कठोर है, जो बेरहम हैं, निर्दय हैं, कातिल है, खुदगर्ज, और देश के द्रोही हैं उनके लिए परमात्मा दूर है। परमात्मा को नजदीक करना चाहते हो तो हृदय को कोमल बनाओ। अभि-मान के कठोर पत्थर उसमें से निकाल फेंको।

पंजाब मे बुल्लेशाह बड़ा दरवेश, खुदापरस्त फकीर हुआ है। अच्छी विभूतियाँ चाहे जिस जाति, धर्म या समाज मे पैदा हो वे संकुचितता से ऊपर उठी हुई होती है। वे महापुरुप जाति, मजहव या सम्प्रदायवाद के पुजारी नही होते। वे सचाई के पुजारी होते है। उन्होने कहा है:—

गंगा गये गल्ल मुगदी नहीं चाहे सौ सौ बार नहाइये।
मक्का गये गल्ल मुगदी नहीं चाहे सौ सौ हज्ज कराइये॥
गया गये गल्ल मुगदी नहीं चाहे सौ सौ पिण्ड भराइये।
बुल्लेशाह गल्ल तदों मुके जब दिल से मैं को भुलाइये॥

गंगाजी मे स्नान कर लेने से जन्म-मरण से छुटकारा नहीं मिल सकता। यदि ऐसा हो जाता तो गंगा में रहने वाले सब जलचर प्राणी कभी के मुक्त हो गये होते। इसी तरह गया तीर्थ में पिण्डदान देने से मुक्ति नहीं होती। मक्का मदीने जाने से हज्ज कर आने से मुक्ति नही होती। यदि मुक्ति पाना है तो काम क्रोध,

अभिमान, मोह, लोभ आदि दुर्गुणों से पिण्ड छुडा लो। दुर्गुणों ने पिण्ड छोड़ा कि मुक्ति हुई। अभिमान का भूत—"मै" और 'मेरापन' निकल गया कि मुक्ति हाथ मे ही है। जब तक "मै" और 'मेरापन' है—अभिमान और ममता है तब तक सारी उपाधि है।

बकरी ने जब "मैं मैं" किया अपना गला कटा लिया।
मैना ने जब "मै ना" कहा लुकमा शकर का खा लिया॥

बकरी "मैं मै" करती है तो उसकी गर्दन पर छुरी चलती है और मैना "मैं ना" "मैं ना" (मै नहीं हूँ) करती है तो वह सारे जग को अपना बना लेती है। और मधुर भोजन खा लेती है। और भी कहा है.—

सिर नहीं ऊँचा कभी रहते सुना अभिमान का।
अपने ही ऊपर पड़ता है थूँका हुआ आसमान का॥

अभिमानी का अभिमान सदा बना नहीं रहता। आसमान पर थूंकने वाले का थूंक उसी के मुख पर पड़ता है। जो अपने को ऊँचा और दूसरे को नीचा दिखाने का यत्न करता है वह स्वयं नीचे गिर जाता है।

गुलाब का फूल अभी पूरा विकसित नहीं हुआ है। वह अभी कली रूप मे है। जाई, जूई, मोगरा, केतकी आदि फूल रहे

है। अपनी आन-शान बता रहे हैं। हँस रहे है। गुलाब ने सोचा—मै इनसे क्या कम हूँ। इनमें तो किसी मे रूप है तो सुगन्ध नहीं, किसी मे सुगन्ध है तो रूप नहीं। मुझ में तो सुगन्ध भी है, रूप भी है। मै क्यो लुक-छिप कर रहूं। वह भी खिलने लगा। खिलते-खिलते आपे से बाहर हो गया। अर्थात् फूल बन कर महकने लगा और मानो पड़ौसियो का मजाक उड़ाने लगा। वह इतराने लगा, इठलाने लगा, मुस्कुराने लगा और दूसरे फूलों को नीचा दिखाने लगा। वह अपनी सुन्दरता और सौरभ पर इतराकर दूसरो का उपहास करने लगा। प्रकृति ने उसे सूचना दी—गुलाब, इतना न इतरा, इतना न इठला, इतना अभिमान न बतला। तेरा रूप और सौरभ इतराने के लिए, दूसरो का मजाक उड़ाने के लिए नही। तुझे अभिमान आ गया। इसका नतीजा अच्छा नहीं। देखना, इसका फल तुझे रात में ही मिल जाएगा। रात मे हवा चली। ओस पड़ा। हवा ने धक्के मारे और ओस ने मुँह मे थूका। गुलाब के फूल की फजीती हुई। जो इतराता है, इठलाता है वह जमीन पर गिर कर ठोकरें खाता है।

अभिमान का नतीजा अच्छा नहीं होता। जो चढ़ता है सो गिरता है। गेंद जितना ऊँचा जाता है उतने ही जोर से नीचे गिरता है। चढ़ना है तो ऐसे चढ़ो कि फिर गिरना ही न पड़े। ऐसी चढ़ाई आध्यात्मिक क्षेत्र मे हो सकती है। लौकिक (जड़) क्षेत्र मे ऐसी कोई चढ़ाई नही जहाँ से गिरना न होता हो। जड़ क्षेत्र की चढ़ाई के अन्दर पतन रहा हुआ है। पतन रहित चढ़ाई

अध्यात्मिक चढ़ाई-है-जिसकी पराकाष्ठा पर पहुंचने पर फिर गिरना नहीं होता। सांसारिक क्षेत्र की प्रत्येक चढ़ाई मे पतन का खतरा है।

ऐसी कोई गेंद या पतंग नहीं देखी जो सदा ऊंची ही रहे। गुब्बारा आसमान में उड़ता है जमीन पर उसके पांव नहीं टिकते परन्तु यह कब तक? जब तक उसमें गैस भरी है तब तक आसमान में स्वतंत्रता पूर्वक विचरण कर रहा है परन्तु गैस निकलते ही जमीन की धूल चाटनी पड़ती है। इसी तरह जब तक मनुष्य में पुण्य रूपी गैस भरी है तब तक उसका स्वैर-विहार और गगन विहार है। पुण्य रूपी गैस के समाप्त होते ही गुब्बारे की तरह धराशायी होना पड़ेगा। यह गैस सदा रहने वाली नहीं है। यह सितारा सदा चमकते रहने वाला नही है। जीवन परिवर्त्तन शील है। इसमे चढाव-उतार आते ही रहते हैं। इसलिए अभिमान मे आकर क्यो जुल्म ढाते हो? समय निकल जाता है बात रह जाती है।

बुल्लेशाह ने कहा कि "मै" (अभिमान) को निकालो। जहाँ "मै" है वहाँ तू (भगवान्) नही है और जहाँ तू है वहाँ "मैं" नहीं है। जहाँ अभिमान है वहाँ भगवान् नहीं है और जहाँ भगवान् हैं वहाँ अभिमान नहीं है। जहाँ पानी है वहाँ आग नहीं और जहाँ आग है वहाँ पानी नही। जहाँ इन्द्रिय सुखो की आसक्ति है वहाँ भक्ति नही और जहाँ भक्ति है वहाँ इन्द्रिय सुखो की आसक्ति नहीं है। जहाँ काम है वहां राम नही, जहां राम है

वहाँ काम नही। जहाँ स्वार्थ है वहां परमार्थ नही। जहाँ परमार्थ है वहाँ स्वार्थ नही। स्वार्थ को छोड़ो, अभिमान को छोड़ो, और प्रभु से नाता जोड़ो।

प्रभु दर्शन के योग्य बनने के लिए दिल में दया का संचार करो। तुम्हारे दिल मे दया की आर्द्रता, स्निग्धता, कोमलता होगी तो दयामय परमात्मा के दर्शन तुम सब जगह कर सकोगे।

जो आँखे साढ़े तीन हाथ के भूखे नंगे जानदार पुतले को नहीं देख सकतीं वे आँखें निराकार परमात्मा के दर्शन कैसे कर सकती है ? जिस मनुष्य का हृदय दुखियो का दुःख देखकर नहीं पसीजता, अनाथ विधवा भूखे, नंगे की आत्मा को जो शान्ति नहीं पहुँचा सकता, उनकी ओर जो आँख मिचौनी करता है, उनकी अवहेलना करता है, जो आप गुलछर्रे उडाता है, जो दीन-दुखियो की परवाह नहीं करता वह प्रभु-दर्शन का अधिकारी ही नहीं है।

लोग भगवान् को नाना प्रकार के भोग चढ़ाते हैं। पकवान, मिष्टान्न, व्यंजनादि का प्रचुर-मात्रा में भगवान् को भोग लगाया जाता है। परन्तु भगवान् उनके भोग का भूखा नहीं है। वह तो दरिद्र नारायण है। भोग लगाने से वह रीझने वाला नहीं है। दरिद्रो की सेवा उसे प्रिय है। कृष्ण ने गीता में कहा है:—

दरिद्रान्भर कौन्तेय !

हे अर्जुन ! दरिद्रो की सेवा करो। उनका पालन पोषण करो। प्रभु-सेवा की प्राथमिक सीढ़ी दरिद्र-सेवा है। जो दीन-दुखियो को ठुकराते हैं वे वास्तव मे परमात्मा को ठुकराते है। लौकिक दृष्टि से दीन-दुखी और भक्त महात्मा प्रभु के बालक कहे जाते है। जो व्यक्ति पिता को रिझाना चाहता है उसे उसके बालको से प्रेम करना चाहिए। ऐसा करने से पिता स्वयमेव रीझ जाता है। कहा है:—

जा के बाल खेलाइये सो रीझत है आप।

कोई व्यक्ति पिता को तो खुश करना चाहे और उसके पुत्र के हाथ से पानी का गिलास या रोटी का टुकड़ा छीन ले तो क्या वह पिता उस व्यक्ति पर रीझ सकता है ? कदापि नही। उसका सहज तरीका उसके बालको को रमाना, खेलाना है और सद्-व्यवहार करना है। ऐसा करने से वह पिता स्वयमेव खुश हो जाता है। उसके लिए अलग प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं रहती। इसलिए भगवान् को भोग लगाने के बजाय यदि भगवान के भक्तो को, दीन-दुखियो को, भूखे नंगो को, शान्ति दी जाय तो वह प्रभु की अधिक उत्तम सेवा होगी।

कहने का मतलब यह है कि भगवान् के दर्शन के लिए पहले अपने आपको तयार कर लो, अपने मे पात्रता पैदा करलो। प्रभु तो दूर नही है, पास ही है केवल देखने की नजर पैदा कर लो। कहा है:—

सर्व व्यापक है तो घर बैठे ही मिल लेंगे किशोर।
ढूंढती दुनियां फिरे हम तो कहीं जाते नहीं॥
ऐसी बुद्धि दीजिए जो भूल जाऊँ आपको।
आपको पाते हैं वो जो आपको पाते नहीं॥
मन-मन्दिर में मेरे भगवन् क्यों भला आते नहीं॥

भगवान तो दूर नही है, तू ही उनसे दूर-दूर रहता है।

महबूब मेरा मुझ ही में मुझको खबर नहीं।
ऐसा छुपा वह पर्दे में आता नजर नहीं॥

मेहंदी का रंग मेहंदी के पत्ते मे ही है, दियासलाई मे ही रोशनी है, आवश्यकता है रगड़ की— संघर्षण की। जिन्दगी संघर्षण से बनती है। तप-त्याग से जीवन निखरता है। सोने का मल आग मे तपने से दूर होता है। आग मे तपने से सोना चमक उठता है। आत्मा मे प्रकाश है, आत्मा मे सुख की निधि है आवश्यकता है तपस्या और साधना की रगड़ से उसे प्रकट करने की।

कस्तूरी मृग की नाभि मे ही कस्तूरी है परन्तु वह मूर्ख यह नही जानता और पागल बन कर उस सुगन्धित चीज को पाने के लिए चौकड़ियां भर २ कर दौड़ २ कर थक जाता है। इसी तरह आत्मा मे ही सुख स्रोत है, आत्मा में ही सुख की निधि है,

इस बात को नहीं समझने वाले व्यक्ति सुख की बाहर शोध करते हैं और निराश बनते है। अतः मृग की तरह भूल न करो। अपने आपको पहचानो। उसमे ही सुख की निधि है। जिस दिन उस गुप्त निधि को जान लोगे, मालामाल हो जाओगे, निहाल हो जाओगे। खुशहाल बन जाओगे। अतः आत्म-दर्शन करो सुख के दर्शन स्वयं हो जाएँगे।

कार्तिक कृष्णा १
ता० ४-१०-५२

ज्येष्ठ और श्रेष्ठ

उपस्थित सज्जनो व देवियो !

ल यह बतलाया गया था कि विश्व के समस्त प्राणी एक ही वस्तु के अभिलाषी हैं। यद्यपि सब की अभिरुचियाँ, धारणाएँ और विचारणाएँ स्थूल दृष्टि से भिन्न भिन्न प्रतीत होती है परन्तु उनमे एक ही वस्तु छिपी हुई है। वह है सुख। सब सुखेच्छु हैं, सुख-पिपासु हैं। सब के अन्तर मे एक ही शक्ति काम कर रही है। वह है सुख की तड़फ, सुख की तीव्र उत्कण्ठा, सुख की प्रबल कामना और भावना। प्राणि मात्र की समस्त प्रवृत्तियो का चक्र इसी केन्द्र-बिन्दु के चारों ओर घूमता है। यह निर्विवाद और सर्वमान्य बात है कि स्वर्ग के अधिपति इन्द्र से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म जन्तु भी सुख की चाह करता है।

सब सुख चाहते है परन्तु चाहने-मात्र से वह हस्तगत नहीं हो सकता। सुख मदारी का रूपया नही है। मदारी हाथ की सफाई से नकली रुपये बना कर लोगों को आश्चर्य चकित कर देता है परन्तु उन से भुगतान नहीं की जा सकती। वह बनावट का खेल है नकली चीज है, हाथ की सफाई है, उसमें असलियत नहीं है, सचाई नहीं है। वह मदारी हथेली रगड़ कर बजा बजा कर दूसरो को रूपये बतला देता है, यदि वे वास्तविक रूपये होते तो वह बेचारा पैसे पैसे के लिए मुँहताज क्यो रहता? क्यो पैसे पैसे के लिए दूसरों का मुख ताकता फिरता? गांव-गांव खेल-तमाशा दिखाने के लिए क्यों उसे भटकना पड़ता? बात यही है कि उसके बनाये हुए रूपयो मे असलियत नहीं है। वे दूर से दिखने मात्र के रूपये है। उनसे सौदा नहीं खरीदा जा सकता, उन से भुगतान नहीं की जा सकती। नकल नकल ही है। असल असल ही है। सचाई सचाई ही है।

सुख सब चाहते है परन्तु वह बातों से मिल जाने वाला नहीं है। कोई व्यक्ति भूख से व्यथित हो रहा है, पीड़ित हो रहा हैं। वह क्षुधा की निवृत्ति चाहता है। परन्तु चाहने-मात्र से तो भूख शांत नहीं हो सकती। जब तक क्षुधा-शांति के लिए उपयोगी साधन न जुटाये जाएँ, उसके लिए प्रयत्न न किया जाय तब तक भूख की निवृत्ति नहीं हो सकती। उसे आटा, पानी, अग्नि और बनाने वाले की आवश्यकता होती है। अन्य भी छोटे बड़े कई साधनो की अपेक्षा रहती है परन्तु मुख्यतया उपर्युक्त चार चीजों

की तो नितान्त आवश्यकता होती है। इनमें से किसी की कमी रही तो रसोई नहीं बनाई जा सकती। इसी तरह जीवन को सुखमय बनाने के लिए, जीवन को उन्नत बनाने के लिए चार साधनों की आवश्यकता रहती है। इनके बिना परम और चरम साध्य की— मोक्ष की— अव्याबाध, अनन्त, अक्षय सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। शास्त्रकार फरमाते हैं:—

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जन्तुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा संजमम्मि य वीरियं॥

सज्जनो! भोजन से तो क्षणिक शान्ति मिलती है। थोड़े समय के लिए भूख शान्त हो जाती है और थोड़े समय बाद पुनः वही बीमारी खड़ी हो जाती है। इस जीव ने अब तक जितना आहार ग्रहण किया है वह यदि एकत्रित होता तो वह ढेर हिमालय जैसे असंख्य पहाड़ो स भी ज्यादा ऊँचा होता! पूर्व जन्मों की बात जाने दीजिए, इसी जन्म मे प्रतिदिन किये गये आहार का हिसाब लगाइये वह भी मणो पर पहुँचेगा इतनी विपुल अन्नराशि खा लेने पर भी जीव की क्षुधा शान्त नहीं हुई। वह क्षणिक शान्त हो जाती है और पुनः जाग उठती है। इसलिए खाने-पीने का सिल-सिला अनादि काल से चला आ रहा है। भूख वह व्याधि है जो अन्न की दवाई लेने से थोडी देर के लिए उपशान्त हो जाती है और फिर उठ खड़ी होती है। रोग और दवाई का यह सिलसिला चलता ही आ रहा है। वास्तविक क्षुधा निवृत्ति तो वह है कि फिर भूख लगे ही नहीं। वास्तविक व्याधि की निवृत्ति

तो वह है कि फिर व्याधि हो ही नहीं। दवाई के बल पर जीवन टिकाये रखना भी क्या आरोग्य है? नहीं, वह आरोग्य की निशानी नही। वास्तविक आरोग्य और व्याधि की निवृत्ति तब समझनी चाहिए जब दुबारा व्याधि उत्पन्न ही न हो। इसी तरह वास्तविक जीवन वह जीवन है जिसके पीछे मौत न हो। वास्तविक सुख वह सुख है जिसके पीछे दु:ख न हो। ऐसा सच्चा सुख, ऐसा ऐकान्तिक और आत्यन्तिक आनन्द मोक्ष प्राप्ति मे ही है। संसार के पदार्थों से वह आनन्द मिल ही नहीं सकता जिसके पीछे दु.ख न हो। संसार के भौतिक पदार्थों के द्वारा होने वाला सुख वास्तविक सुख नहीं है। वह तो सुखाभास है। वह मदारी के उस रूपये की तरह है जो वास्तविक रूपया नहीं किन्तु रूपयाभास है। सच्चा सुख-सम्पूर्ण सुख, निर्वाण का सुख ही है क्यों कि उसके पीछे दुख का भय नहीं है। वह अव्याबाध, अनन्त और अक्षय है। वह शाश्वत है। उस शाश्वत सुख को प्राप्त करने के लिए शास्त्रकार ने चार दुर्लभ साधनो की आवश्यकता प्ररुपित की है।

ससार मे ऐसे कई व्यक्ति हैं जो मोक्ष, परलोक, स्वर्ग, नरक आत्मा, परमात्मा मे विश्वास नही करते। वे कहते हैं—" यह लोक मीठा परलोक किसने दीठा " वे वर्त्तमान सुखाभासों के लोलुपी विषयों में इस तरह तन्मय हो जाते है, ऐसे आसक्त हो जाते है कि उन्हे उनके अतिरिक्त और कुछ दिखाई ही नही देता है। जैस गटर का कीड़ा गंदी गटर मे ही इतना आसक्त रहता है

कि वह समझता है कि इससे अधिक अच्छी जिन्दगी और कोई हो ही नहीं सकती। वह गटर के अतिरिक्त अन्य बातो का अपलाप करता है। ठीक इसी तरह वर्त्तमान भौतिक सुखाभासो मे आसक्त प्राणी इतने विचार-शून्य बन जाते हैं कि वे भौतिक दुनिया के सिवाय अन्य धर्म कर्म स्वर्ग, नरक, मोक्ष, आत्मा, परमात्मा आदि अन्तर सृष्टि का अपलाप करने लगते है। बाह्य सृष्टि ही उनकी आंखो में चढ़ी रहती है अतः अन्तर सृष्टि का वे निषेध करने लगते है। उस ओर से आंखे मींच लेते हैं। परन्तु अपनी आंखे मीच लेने से सत् पदार्थ का अभाव नहीं हो सकता। जो पदार्थ अपनी सत्ता बनाये हुए हैं उनकी तरफ से यदि कोई व्यक्ति आंखो बंद कर लेता है तो इससे उन पदार्थों की सत्ता मे कोई अन्तर नहीं आ सकता है। जो सत् है वे सत् ही रहने वाले हैं। गटर के कीड़े के गटर-बाह्य सृष्टि का निषेध करने से उसका अस्तित्व मिट नहीं जाता। वह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है। फिर भी नास्तिक कहते है कि—

> हत्थागया इमे कामा, कालिया जे अणागया।
> को जाणई परे लोए, अत्थि वा नत्थि वा पुणो॥

पाँच इन्द्रियो के मनोरजक, चित्ताकर्षक और प्रिय लगने वाले शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श मय पदार्थों में आसक्त बने हुए व्यक्ति इन भोग्य पदार्थों में ही जीवन की सार्थकता समझते है। वे समझते और मानते है कि भोगमय जीवन ही सर्व

श्रेष्ठ जीवन है। यही सुख की पराकाष्ठा है। यह भोगमय जीवन हमे प्राप्त है तो इसका आनन्द क्यो न लूटा जाय? काम सुख हमारे हाथ मे आया हुआ है। तथा कथित स्वर्ग-मोक्ष का सुख तो भविष्य के गर्भ मे होने से अनिश्चित है। परलोक है या नही, यह कौन जानता है? अनिश्चित बात के पीछे हाथ में रहे हुए सुख को छोड़ना बुद्धिमत्ता नही है। जो ध्रुव को छोड़कर अध्रुव की आशा करता है वह खेद-खिन्न होता है। अतः जीवन का सर्वस्व काम सुखो का उपभोग करना है, इसी मे जीवन की सार्थकता है। खाओ-पीओ-ऐश आराम करो। 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' पास में पैसा न हो तो कर्ज लेकर भी जीवन का आनन्द लूटो।

पिब खाद च चारु लोचने, यदतीतं वरगात्रि ! तन्न ते
न गतं प्रतिनिवर्त्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरम्

खाओ-पीओ! यह सुनहरी अवसर है, बार बार यह अवसर मिलने वाला नहीं है। जो समय चला गया वह लौटकर नहीं आता। जो हाथ से निकल गया सो निकल गया। यह शरीर पांच भूतो का पिण्ड है। आत्मा नाम की कोई चीज नहीं है। स्वर्ग, नरक, परलोक, पुण्य, पाप कुछ नही है। खाओ, पीओ और आनन्द करो।" यह नास्तिक जड़वादी की विचार धारा है।

भद्र पुरुषो! गटर के कीड़े को गटर मे ही आनन्द आता है यदि उसे फूल मे रख दिया जाय तो जुखाम हो जायगा और सुगन्ध से उस का दम घुटने लगेगा. उसे तो गटर की गन्दगी ही

सुहाती है। विषय-भोग के कीड़ो को धर्म के उपवन मे आत्मा के गुलशन मे आनन्द नहीं आता। उन्हे काम-भोग मे ही जीवन की सार्थकता प्रतीत होती है। आत्मिक उपवन के भौरो को काम-भोग की गन्दी गटरो मे आनन्द नहीं आ सकता और विषय-भोग के कीड़ो को आत्मिक उद्यान मे आनन्द नहीं आता। विषयो मे रचे-पचे रहने से उनकी बुद्धि उससे आगे कोई बात सोचने मे समर्थ नही होती इसलिए वे चर्म-चक्षुओ से न दिखाई देने वाले स्वर्ग, अपवर्ग आत्मा आदि का अपलाप करते हैं। परन्तु उनके अपलाप करने से सद्‌भूत तत्व का अभाव नहीं हो सकता।

सज्जनो! जो व्यक्ति वर्त्तमान-सुखो के मोह मे पड़ कर अनागत स्वर्गादि अतीन्द्रिय पदार्थों का अपलाप करते हैं वे मानो गोद मे खेलते बालक के व्यामोह में पड़ कर गर्भस्थ बालक का अपलाप करते है। यद्यपि गर्भ मे रहा हुआ बालक दृष्टिगोचर नही होता है तदपि उसके अस्तित्व को प्रकट करने वाले प्रबल साधन और प्रमाण है। कोई भी माता अपने गर्भस्थ बालक की उपेक्षा नही कर सकती। गर्भस्थ बालक अभी आँखों से नहीं दिखाई देता है। परन्तु समय पा कर वही गर्भस्थ बालक जन्म लेकर प्रकट होता है। इसी तरह स्वर्ग-नरक के सुख दुःख अभी आँखो से ओझल हैं परन्तु समय पर उनकी प्रतीति हुए विना नहीं रह सकती। गर्भस्थ बालक के दृष्टिगत न होने पर भी उसके अस्तित्व को सिद्ध करने वाले प्रबल साधन हैं इसी तरह स्वर्ग-अपवर्ग और आत्मा के अतीन्द्रिय होने पर भी उनके अस्तित्व को सिद्ध करने वाले अनेको अविनाभावी चिह्न हैं।

कोई मनुष्य विशाल समुद्र के किनारे खड़ा है। उसे समुद्र का दूसरा छोर नजर नहीं आता है। तो क्या इससे यह कहा जा सकता है कि समुद्र का दूसरा किनारा है ही नहीं? इस किनारे पर खड़े हुए व्यक्ति को समुद्र का दूसरा किनारा नहीं दिखाई देना है इसका कारण किनारे का न होना नहीं है अपितु वहाँ तक दृष्टि का न पहुँच पाना है।

अगर वह व्यक्ति कहे कि मैं इसे कैसे मानूँ? तो उसे पूछना चाहिए कि–भाई, तू इस किनारे को तो मानता है न? यदि वह कहे कि मै इस किनारे को भी नहीं मानता हूँ तो समझ लीजिए कि उसकी बुद्धि का दिवाला निकल गया है। यदि वह कहे कि मै इस किनारे को तो मानता हूँ तो उसे यह कहना चाहिये कि तुम्हारा इस किनारे को स्वीकार करना ही दूसरे किनारे की सत्ता को साबित करता है। प्रत्येक दिल-दिमाग वाला व्यक्ति यह मानेगा कि कोई समुद्र ऐसा नहीं हो सकता जिसके दो किनारे न हो। एक किनारा दूसरे किनारे के हुए बिना नहीं हो सकता। इसी तरह चार्वाक (नास्तिक) को पूछना चाहिए कि वह इह लोक को मानता है या नहीं? यदि वह इह लोक को न माने तो यह प्रत्यक्ष विरूद्ध बात है। यदि वह इह लोक को मानता है तो उसे पर लोक भी मानना चाहिए क्यो कि परलोक के हुए बिना इह-लोक हो ही नहीं सकता।

मान लीजिए अभी किसी व्यक्ति की उम्र २० वर्ष की है। उसका सम्प्रति काल का अस्तित्व उसके बीस वर्ष पहले के

अस्तित्व को बतला रहा है। उस समय यदि वह न होता तो इस समय भी वह नहीं हो सकता था। उसका सम्प्रति काल में होना ही उसके भूतकाल के अस्तित्व को साबित कर रहा है क्यों कि यदि वह पहले न होता तो अब भी नहीं हो सकता था, क्यों कि, जिसका अभाव होता है उसका सद्भाव नहीं हो सकता। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है।

नासतो जायते भावो नाभावो जायते सतः

असत् कभी उत्पन्न नहीं हो सकता और सत् का कभी नाश नहीं हो सकता। यह प्रकृति का अटल नियम है। इसे सब दार्शनिक निर्विवाद रूप से स्वीकार करते हैं। जिस व्यक्ति ने बीस वर्ष पहले जन्म धारण किया है वह उसके पहले भी सद्भाव रूप में होना चाहिए। यदि उसका पहले सद्भाव न हो तो वह पैदा हो ही नहीं सकता क्यों कि असत् पदार्थ-कभी उत्पन्न नहीं होता। उसका उत्पन्न होना ही उसके पूर्व जन्म के अस्तित्व को बतला रहा है। उसका यह जन्म ही उसके पूर्व जन्म का द्योतक है। पहला जन्म न होता तो यह जन्म नहीं हो सकता था क्यों कि असत् की उत्पत्ति होती ही नहीं। इसी तरह पिछले जन्म से आया है तो आगे के जन्म मे भी जाना पड़ेगा क्यों कि जो सत् है उसका विनाश कभी नहीं हो सकता।

जो आया है वह जाएगा। क्या धनी क्या निर्धन, क्या योगी क्या भोगी, क्या सुखी क्या दुखी, क्या स्त्री क्या पुरुष। जो आया है वह अवश्य जाएगा।

आज मनुष्य धन के नशे मे गरीबो को कठपुतली की तरह मनमाने ढग से नचाता है, उनके मान-सन्मान पर आघात करता है, उनकी जान को जान नही समझता, नके प्राण को प्राण नही समझता, उनके मान को मान नही समझता है, । परन्तु अय धन वालो ! सुन लो, आंखे खोल लो, होश सम्भाल लो, यह शेखियाँ सदा रहने वाली नही है। आज तक दुनियां क रंगमंच पर न किसी की शेखी सदा रही है न रहेगी।

कवि ओस से कहता है:—

ओस है पत्ते के ऊपर दिन चढ़े ढल जायगी।
जो नमी बाकी रही वह धूप से जल जायगी ॥

याद रखो, जिस तरह आपको अपना सन्मान प्यारा है उसी तरह प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह गरीब से गरीब क्यो न हो, अपना सन्मान प्यारा है। दूसरों का तिरस्कार करने वाला व्यक्ति स्वयं तिरस्कृत हुए बिना नहीं रह सकता। यदि आप दूसरों से सन्मान पाने की आशा रखते हैं तो आपको दूसरो का सन्मान करना चाहिए। दूसरो का सन्मान किए बिना आपका सन्मान सुरक्षित नहीं रह सकता। सन्मान करोगे तो सन्मान पाओगे। अपमान करोगे तो अपमान पाओगे। यह तो गुफा वाली प्रतिध्वनि है। जैसा बोलोगे बदले में वैसा ही सुनोगे।

भाइयो ! धन और ऐश्वर्य के नशे मे पागल मत बनो। अपने विवेक को, भान को, सहज ज्ञान को मत भुला बैठो। मुझे

अनु व तो नही है पर मैने सुना है कि एक हजार की थैली मे एक बोतल का नशा है। एक बोतल पी लेने से होश-हवास ठिकाने नही रहते तो जिस पर सौ या हजार बोतलो का नशा चढ़ा हो उसके होश ठिकाने रहे तो कैसे रहे?

अय दुनिया के लोगो! संभल कर चलो, आंखें खोल कर चलो, किसी गरीब को रौंद कर मत चलो। वह भी जान-प्राण और मान रखता है। याद रखो, दुनिया चलती फिरती है। यह कभी एक-सी न रही है और न रहेगी। कभी धूप है और कभी छाया है। कभी एक जैसी स्थिति न किसी की रही है और न कभी रहेगी। कहा है:—

सदा एक जैसा जमाना नहीं है,
कि दुखियों को अच्छा सताना नहीं है।

चौमासे में नदियां उमड़ती हैं। वे जल की बड़ी निधि पा कर इतरा उठती हैं। अपनी मर्यादा छोड देती हैं। किनारों से बाहर निकल कर वे जान-माल को हानि पहुँचाती हैं। वे भान भूल कर आपे से बाहर हो जाती हैं और दूसरों के लिए अहितकर बन जाती हैं। परन्तु नदियों का यह इतराना, उनका यह बावलापन कब तक बना रहता है? जब तक पर्वतों से— ऊपर से पानी आता है तब तक ही यह इतराना है। जब वह स्रोत सूख जाता है तब नदियों की मस्ती भी उतर जाती है और

वे ठिकाने बैठ जाती हैं। एक समय आता है कि उन में पानी का नाम तक नही रहता और रेत का ढेर ही ढेर शेष रह जाता है।

चार दिन की चांदनी आखिर अंधेरी रात है।
चलना सभी को होयगा रहने की झूठी बात है॥

अय धन और अधिकार की मस्ती में झूमने वालो! गरीबो पर जुल्म न करो इसका नतीजा कभी अच्छा होने वाला नहीं है। जुल्म करने का परिणाम बहुत बुरा है। जब तक पुण्य का उदय है तब तक तुम्हारी मनमानी चल सकती है, तुम्हारे पाप छिप सकते हैं परन्तु जब पुण्य क्षीण हो जायगा तो पता चल जायगा कि जुल्म और जबर्दस्ती का क्या फल होता है।

कह रहा यह आसमां कुछ समय का फेर है।
पाप का घड़ा भर चुका अब डूबने की देर है॥

जो व्यक्ति परिस्थितियो का मारा हुआ है, लाचार बना हुआ है, कमजोर है, आजीविका के साधनो से हीन है, दीन है कंगाल है, वेहाल है वह अन्याय और जुल्म करने वालो के जुल्मो को मूक बनकर सह लेता है, वह अपनी जबान पर, दिल मे उठने वाले तूफान पर बरबस ताले जड देता है, कुछ नहीं बोलता है, चुप चाप अपमान का घूंट पी जाता है। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि प्रकृति भी किसी के जुल्म को सहन कर लेगी। नही। प्रकृति कमजोर नहीं है। वह किसी के जोर जुल्म को सहन नहीं

कर सकती है। वह परिस्थितियों से मजबूर बना हुआ व्यक्ति भले कुछ न बोलता हो, जुल्म ढाने वाले का भले ही वह प्रकट रूप से कुछ नहीं बिगाड़ सकता हो तदपि यदि उसके मुंह से एक दर्द भरी आह निकल गई, यदि उसकी आंखों से एक गरम आंसू भी टपक पड़ा तो समझ लेना चाहिए कि जुल्मी का भाग्य चक्र फिर चुका। उसकी अवधि पक चुकी। उसका अन्त अब समीप ही है।

तुलसी आह गरीब की कभी न निष्फल जाय।
मरे चाम की सांस से लोह भस्म हो जाय॥

धौंकनी से गरम हवा निकलती है। यद्यपि वह जड़ है। वह मुर्दे का चमड़ा है। मुर्दे के चमड़े से निकली हुई आह-हवा लोहे जैसे कठोर पदार्थ को भी भस्मी भूत कर देती है तो जानदार गरीब की आह क्या परिणाम ला सकती है, यह स्वयं सोच लेने की बात है।

किसी गरीब की आह लेना अच्छा नहीं है। किसी की दुराशीष न लो। ऐसे काम करो जिससे दूसरो के आशीर्वाद प्राप्त हो। गरीब का हृदय वैसे ही सतप्त रहता है, उसकी रग-रग में दुःख रमा रहता है फिर उसे अपने, कठोर बर्ताव से—अपमान जनक व्यवहार से विशेष दुखी न करो। जले हुए को न जलाओ। बन सके तो किसी रोते हुए के आंसू पोंछो यदि न बने तो रोते को अधिक तो न रुलाओ।

भाइयो ! जीवन को ऊँचा बनाना चाहते हो तो गरीबो को गले लगाओ। गरीबो के उद्धार मे अपनी शक्ति लगाओ। यदि आपने गरीबो के हित के लिए अपनी शक्ति का थोड़ा भी उपयोग किया तो समझ लीजिए आपके हाथ मे एक विराट शक्ति आ गई। आप सुरक्षित बन गये। इसके विपरीत यदि आपने गरीबो पर मनमाना जोर-जुल्म का वर्त्ताव चालू रखा तो निश्चित समझ लीजिए कि आप खतरे का आह्वान कर रहे हैं। अब पूंजीवाद का जमाना नहीं रहा है। मै आपको दुराशीष नही देता परन्तु सचाई की तरफ से आखें बंद भी नहीं की जा सकती हैं।

आज अमीरों को दावते देने वाले, मान-सन्मान देने वाले बहुत है। मिनिस्टरो को, कमिश्नरो को, इन्सपेक्टरों को, जजो को, डाक्टरो को और वकीलो को पार्टियाँ देने वाले डालियाँ भेंट करने वाले बहुतेरे है। वह क्यो दो जाती है, वह मैं और आप सब अच्छी तरह समझते है। ऐसी दावते और डालियाँ देने वाले और लेने वाले सब कोई समझते है कि इनके मूल मे क्या भावना छिपी हुई रहती है। भाइयो ! इस प्रकार की दावतें देने से पुण्य का उपार्जन नहीं होता। पुण्य का उपार्जन तो किसी भूखे को, प्यासे को, नंगे को, बेकार को, बेहाल को शान्ति देने से होता है। समुद्र मे पानी उडेलने से क्या लाभ ? भरे हुए को भरने से लाभ नहीं होता उसमे तो स्वार्थ की बू रही होती है। दीन दुखियो को शान्ति पहुँचाओ। गीता मे भी कृष्ण अर्जुन को कहते हैं.—

दरिद्रान् भर कौन्तेय !

हे अर्जुन ! दीनो का पालन पोषण करो, उन्हे आत्म-निर्भर बनाओ। उन्हे अपनाओ, गले लगाओ । उनके साथ सहयोग करो । उन्हे अपना भाई समझो। उनसे प्रेम करो। उन्हे न सताओ। उनका अपमान और तिरस्कार न करो।

बकरे मरे की खाल से लोहा भसम हो जात है।
जो सताता और को वह बडा बदजात है ॥
मत दुखियों के दिल को दुखाया करो।
कुछ दुनिया में पुण्य कमाया करो ॥
बदी करने से दिल को हटाया करो ॥
नमक पड़ा लोटे में जो खुद ही पड़ा गल जायगा ॥
एकला काफूर जो एक दम ही वह उड़ जायगा।
ऐसी दुनिया न इसमें लुभाया करो ॥
कुछ दुनिया में पुण्य कमाया करो ॥
बदी करने से दिल को हटाया करो ॥

महापुरुपो की खुली घोपणा है कि विश्व कण्टकाकीर्ण है। मार्ग मे काटे बिछे हुए हैं। रास्ता तय करना है तो आंखें खोलकर चलो। अपने को सभालो।

कांटा किसी के मत लगा गोमिसले गुल फूला है तू।
वह हक में तेरे तीर है किस बात पर भूला है तू ॥

वह कौनसा गुलशन (उपवन) है जिसमे फूल खिलते और मुरझाते नहीं हैं। अरे फूल! तू अभिमान न कर। यह खिलावट यह मुस्कुराहट चंद दिन की पाहुनी है। देखते-देखते चली जाने वाली है। इस बगीचे मे तेरे जैसे हजारों फूल खिले है, खिलते रहे है और खिलते रहेगे। हजारों फूल खिल खिल कर खिर चुके हैं। तेरी यह खिलावट सदा रहने वाली नहीं है। इसलिए सौन्दर्य और सुगन्ध पाकर अभिमान न कर। तेरे सौन्दर्य और सुगन्ध की सार्थकता इसी में है कि तू अपने सौन्दर्य से किसी दूसरे को सुशोभित कर दे और अपने सौरभ से आसपास के वातावरण को भी सुगन्धित बना दे। इसमे तेरे जीवन की सार्थकता है। नहीं तो हजारों फूल खिल-खिल कर मुरझा गये है, आज उनका कोई अस्तित्व शेष नहीं। तेरी भी गणना उनमे ही हो जाएगी। तेरा सौन्दर्य और सौरभ इतराने के लिए या दूसरो का उपहास करने के लिए नहीं है वह तो किसी अन्य की शोभा बढ़ाने और उसे सुगन्धित बनाने के लिए है। मानव को मिली हुई सम्पत्ति का भी यही उपयोग है। रे मानव! तुझे इसलिए सम्पत्ति नहीं मिली कि तू अभिमान में छका रहे, दीनो का तिरस्कार करता रहे, उनका शोषण कर अपना पोषण करता रहे। तेरी सम्पत्ति की सार्थकता इसमे है कि तू उससे दूसरो को शान्ति पहुँचाए, दूसरों को भी उससे लाभान्वित करे। यदि तू धन पाकर इतराता है, अभिमान करता है तो तू अपने रास्ते मे कांटे बिछाता है। अतः अभिमान करना छोड़ दे। किसी की

बिगड़ी को बनादे किसी दुखी को हंसा दे, किसी की उजड़ी को बसा दे तो तेरी जिन्दगी और बन्दगी सफल है।

भाइयों! मैं आपको चेतावनी देता हूँ, हित की बात सुनाता हूँ। उसे अपने हृदय-पत्र पर लिख लो। यदि आपका हृदय-पत्र कोरा (स्वच्छ) है तो आप लिख सकेंगे परन्तु यदि उस हृदय-के कागज पर छल, कपट बेईमानी के अक्षर पहले से ही लिखे होंगे तो आप यह लिखने मे शक्तिमान नहीं हो सकेंगे लिखे हुए कागज पर लिखना मेरे बश की बात नहीं है।

सज्जनो! आप ही नहीं संसार के सब मनुष्य ज्येष्ठ (बडा) बनने की आशा रखते है। सब चाहते है कि हम धन के क्षेत्र में, व्यापार के क्षेत्र मे, विद्या के क्षेत्र में ज्येष्ठ बनें। सब ज्येष्ठ बनना चाहते है परन्तु मै आपको कह देना चाहता हूँ कि आप ज्येष्ठ बनने का प्रयास छोड़ कर श्रेष्ठ बनने का प्रयास कीजिए। ज्येष्ठता का वह महत्व नही जो श्रेष्ठता का है। श्रेष्ठता, रहित ज्येष्ठता का कोई महत्व नहीं है। ज्येष्ठ बनना और बात है एव श्रेष्ठ बनना और बात है।

ज्येष्ठ का अर्थ होता है - बड़ा। श्रेष्ठ का अर्थ होता है उत्तम जिसे आप प्रान्तीय भाषा में चोखा भी कहते है। चोखा का दूसरा अर्थ चावल भी होता है। वह चोखा चोखा कब बनता है? पहले शालि रूप में होता है. उसपर छिलका होता है उसकी दमक-चमक-सफेदी और खुशबू उस छिलके में छिपी रहती है। परन्तु जब वह शालि धान्य चोट सहन करता है,

कूटा जाता है, मार सहन करता है, प्रहार झेलता है तब उसका छिलका दूर हो जाता है, और स्वच्छ, चमक- दमक- वाला, और सुगन्धित चोखे के रूप मे बाहर आता है। किसी को मारने से शालि चोखा नहीं बनता है पन्तु चोट सहने वाल चोखा बनता है, मारने वाला "चोखा" नही बनता, मार सहने वाला चोखा बनता है, चोट मारने वाला निखरता नहीं है, निखरता है चोट सहने वाला। जिसे बनना होता है, पात्र बनना होता है उसे चोट सहनी ही पड़ती है। जीवन रूपी फूल कष्ट के कॉटो के बीच मे ही खिलता है। महापुरुष संघर्ष और मुसीबतो के बीच मे से गुजरते है तब उनमें महानता आती है, श्रेष्ठ पुरुष मुसीबतो से घबराते नहीं है, वे तो उनका स्वागत करते है, मुसीबतो की बात जाने दीजिए वे इससे भी आगे बढ़ते हैं और मौत से भी- नही डरते हैं। वे दूसरो के हित के लिए मृत्यु तक का सहर्ष आह्वान करते हैं। विश्व के हित के लिए यदि अपना बलिदान देना पड़े तो वे विश्वहितंकर श्रेष्ठ पुरुप पीछे कदम नहीं हटाते और हॅसते २ मौत का आलिंगन कर लेते है। शायर कहता है :—

किस कदर सीमाव है बेताब मरने के लिए।
शौक है अक्सीर कहलाऊँगा मर जाने के बाद॥

बड़े गजब की उड़ान मारी है कवि ने! पारा धातु शोधने वाले से कहता है कि तू दूसरो को क्या मारता है। यदि

तुझे मारने का शौक है तो मुझे मार। मेरे जिन्दा रहने से दूसरों का अहित होता है और मेरे मरने से दूसरों का भला होता है इसलिए तू मुझे मार (शोध)। मेरा जिन्दा रहना दूसरों का मरना है और मेरा मरना किसी मरते हुए को जीवन - दान देने वाला है। अतः मुझे मरने का दर्द नहीं। पारा मरने के लिए कितना उत्कंठित होरहा है ! पारा कच्चा होता है तब वह विष रूप होता है परन्तु जब वह शोध लिया जाता है तो वह रसायन बन जाता है जो मरने वाले व्यक्ति में भी चेतना का संचार कर देता है। किसी मृत्युशय्या पर पड़े हुए व्यक्ति से कुछ गड़ा हुआ धन पूछना हो तो शोधित पारा की मात्रा दी जाती है तो वह मरता-मरता भी कुछ बोल जाता है। पारा परोपकार के लिए, अपना जीवन न चाहता हुआ मौत की कामना करता है। परहित के लिए वह जीवन कुर्बान कर देने को लालायित है। कवि ने कहा है:—

जबसे सुना है कि मरने का नाम जिन्दगी है।
सर को कफन बांधे कातिल को ढूंढते हैं॥

महापुरुष— श्रेष्ठ पुरुष— विश्व हितंकर बनने के लिए अपना जीवन तक न्यौछावर कर देने को तय्यार होते हैं। किन्तु मुसीबतों से डर कर पीछे कदम नहीं हटाते।

खौफ़ नाकामी है जब तक कामयाबी है मुहाल।
मुश्किलें जब बंध गईं हिम्मत सब आसां हो गई॥

सर शमेशा कटाइये पर दम न मारिये।
मंजिल हजार सख्त हो हिम्मत न हारिये॥

दुनिया में अपने आप को बड़ा कहलाने वाले व्यक्ति बहुत हैं। थोडा बहुत धन हुआ कि मनुष्य अपने को ज्येष्ठ—बड़ा आदमी समझने लगता है। थोड़ी सी विद्या सीख ली तो मानव अपने को ज्येष्ठ समझने लगा। डाक्टरी या वकालात का पेशा चमकने लगा तो डाक्टर-वकील अपने को ज्येष्ठ मानने लगे। धन से, बल से, कल से, अक्ल से, शकल से ज्येष्ठ होने पर कोई वस्तुतः ज्येष्ठ नही हो जाता। वास्तविक ज्येष्ठता का आधार तो श्रेष्ठता पर है।

कोई व्यक्ति छल-बल से, कपट से, धोखादेही से, बेईमानी से गरीबों का शोषण कर धन बटोर लेता है और उससे वह अपने को ज्येष्ठ समझ लेता है तो वह भ्रम मे है। इसके विरुद्ध जो व्यक्ति न्यायोचित साधनो से ईमानदारी पूर्वक धन कमाता है और उससे दीन दुखियो का भला करता है तो वह ज्येष्ठ कहलाने का अधिकारी हो सकता है। क्योंकि उसमे श्रेष्ठता का संचार हो गया है। जिस ज्येष्ठता मे श्रेष्ठता का संचार है वही वस्तुतः ज्येष्ठता है। कोरी ज्येष्ठता का कोई महत्व नही। शायर कहता है:-

अरे ताड़ लम्बा घना ऊँचा गया आकाश॥
गहरी छाया देख कर मैं आया तुझ पास॥
मैं आया तुझ पास कूप में छाया डारी।
नहीं पंथी को विश्राम देखली शोभा थारी॥

❀ ❀ ❀

बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे लम्बी खजूर ।
बैठन को छाया नहीं फल चाखे तो दूर ॥

खजूर का पेड़ बहुत लम्बा- ज्येष्ठ होता है परन्तु वह न तो पथिको को गहरी व शीतल छाया देता है और न उसके फल ही पथिको के उपयोग में आते है (क्योकि वे बहुत दूर होते है)। ऐसे बड़े वृक्ष से क्या फायदा जो न ठंडी छाया देता है और न फल ही देता है। उसका बड़प्पन किस काम का ? ऐसे ऊँचे वृक्ष की अपेक्षा तो वे छोटे वृक्ष ही अच्छे जो पथिकों को ठन्डी छाया देते हैं, विश्राम देते है और खाने के लिए मधुर फल भी देते हैं। जो वृक्ष न तो ठडी छाया देता है और न मीठे फल ही देता है उससे तो वृक्ष का न होना ही अच्छा है। ऐसे सुहाग से तो रंडापा ही अच्छा। यह कहावत चरितार्थ होती है। लम्बे खजूर के पेड़ की तरह वे लखपति करोड़पति धनवान भी किस काम के जो न दूसरों को आश्रय देते हैं और न उसका फल किसी दूसरे को चखने देते है। वे धन के होनें मात्र से— नाम मात्र के बड़े भले कहला लें वे श्रेष्ठ कहलाने के हकदार नहीं हो सकते। धन के लोलुपी और माया के कीड़े हजारों नही असंख्य आये और खाली हाथ चले गये। इसलिए हे सेठ कहलाने वालो ! सच्चे अर्थ मे सेठ- (श्रेष्ठ) बनो।

आजकल जिस-किसी व्यक्ति के पास थोड़े से कागज के टुकड़े जमा हुए कि वह सेठ कहलाने-लगता है। परन्तु चाँदी-सोने को जमा कर लेने से कोई सच्चे अर्थों मे सेठ नहीं कहला सकता। सेठ कहलाना इतना आसान नही है। सेठ शब्द श्रेष्ठ का ही अपभ्रंशरूप है। जिसमे श्रेष्ठता है, साधारण जन-समाज की अपेक्षा जिसमे श्रेष्ठता की मात्रा विशेष हो वही सेठ पद प्राप्त करने का अधिकारी है। इस प्रकार की श्रेष्ठता धारण करने वाले व्यक्ति ही सेठ के गौरवपूर्ण पद का दायित्व निभा सकते है। अन्यथा दुकान पर सेठ का साइनबोर्ड तो लगा लिया और नीति अपनाई "या बेईमानी तेरा ही आसरा" या "आ मेरी हाट मे, डू तेरी टाट मे" तो यह सेठ शब्द को कलंकित करना है।

आज का मानव-समाज धन का इतना अन्ध-पुजारी बन चुका है कि वह धन को श्रेष्ठता का माप-दण्ड मान रहा है। जिसके पास जितना अधिक धन हो वह उतना ही बड़ा सेठ उतना ही बड़ा आदमी समझा जाता है चाहे वह नीति और सदाचार के क्षेत्र मे गिरा हुआ भी क्यों न हो। आज के समाज मे धनवान को प्रतिष्ठा दी जाती है चाहे वह वेश्यागामी क्यों न हो, जुआरी क्यो न हो, नीति-भ्रष्ट क्यो न हो। मानवो का मानस धन का गुलाम बन गया है इसलिए वह धन के पीछे नीति और सदाचार को ताक में रख देता है। धन की गुलामी ने नीति और सदाचार की उपेक्षा कर रखी है इसीलिए धनिक जन धन के बल से- चांदी के या कागज के टुकड़ो के बल से मनुष्य को और

❀ ❀ ❀

बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे लम्बी खजूर ।
बैठन को छाया नहीं फल चाखे तो दूर ॥

खजूर का पेड़ बहुत लम्बा- ज्येष्ठ होता है परन्तु वह न तो पथिको को गहरी व शीतल छाया देता है और न उसके फल ही पथिको के उपयोग में आते हैं (क्योकि वे बहुत दूर होते है)। ऐसे बड़े वृक्ष से क्या फायदा जो न ठंडी छाया देता है और न फल ही देता है। उसका बड़प्पन किस काम का ? ऐसे ऊँचे वृक्ष की अपेक्षा तो वे छोटे वृक्ष ही अच्छे जो पथिकों को ठन्डी छाया देते हैं, विश्राम देते हैं और खाने के लिए मधुर फल भी देते हैं। जो वृक्ष न तो ठडी छाया देता है और न मीठे फल ही देता है उससे तो वृक्ष का न होना ही अच्छा है। ऐसे सुहाग से तो रंडापा ही अच्छा। यह कहावत चरितार्थ होती है। लम्बे खजूर के पेड़ की तरह वे लखपति करोड़पति धनवान भी किस काम के जो न दूसरो को आश्रय देते हैं और न उसका फल किसी दूसरे को चखने देते है। वे धन के होने मात्र से— नाम मात्र के बडे भले कहला लें वे श्रेष्ठ कहलाने के हकदार नहीं हो सकते। धन के लोलुपी और माया के कीड़े हजारों नहीं असंख्य आये और खाली हाथ चले गये। इसलिए हे सेठ कहलाने वालो! सच्चे अर्थ में सेठ- (श्रेष्ठ) बनो।

आजकल जिस-किसी व्यक्ति के पास थोड़े से कागज के टुकड़े जमा हुए कि वह सेठ कहलाने-लगता है। परन्तु चाँदी-सोने को जमा कर लेने से कोई सच्चे अर्थों में सेठ नहीं कहला सकता। सेठ कहलाना इतना आसान नहीं है। सेठ शब्द श्रेष्ठ का ही अपभ्रंशरूप है। जिसमे श्रेष्ठता है, साधारण जन-समाज की अपेक्षा जिसमें श्रेष्ठता की मात्रा विशेष हो वही सेठ पद प्राप्त करने का अधिकारी है। इस प्रकार की श्रेष्ठता धारण करने वाले व्यक्ति ही सेठ के गौरवपूर्ण पद का दायित्व निभा सकते है। अन्यथा दुकान पर सेठ का साइनबोर्ड तो लगा लिया और नीति अपनाई "या बेईमानी तेरा ही आसरा" या "आ मेरी हाट मे, दूं तेरी टाट मे" तो यह सेठ शब्द को कलंकित करना है।

आज का मानव-समाज धन का इतना अन्ध-पुजारी बन चुका है कि वह धन को श्रेष्ठता का माप-दण्ड मान रहा है। जिसके पास जितना अधिक धन हो वह उतना ही बड़ा सेठ उतना ही बड़ा आदमी समझा जाता है चाहे वह नीति और सदाचार के क्षेत्र मे गिरा हुआ भी क्यो न हो। आज के समाज मे धनवान को प्रतिष्ठा दी जाती है चाहे वह वेश्यागामी क्यो न हो, जुआरी क्यो न हो, नीति-भ्रष्ट क्यो न हो। मानवो का मानस धन का गुलाम बन गया है इसलिए वह धन के पीछे नीति और सदाचार को ताक मे रख देता है। धन की गुलामी ने नीति और सदाचार की उपेक्षा कर रखी है इसीलिए धनिक जन धन के बल से- चादी के या कागज के टुकड़ो के बल से मनुष्य को और

धर्म को भी खरीद रहे हैं। एक धनवान व्यक्ति चाहे जैसे दुराचार का सेवन करता हो-तदपि वह समाज में अग्रगण्य स्थान पाता है और उसका धन उसके पापों पर आवरण डाल देता है। धन-गुलाम समाज जान-बूझ कर उसके प्रति उपेक्षा बतलाता है, आँख मिचौनी करता है। उसके पापो को अन्दर ही अन्दर बढ़ावा देता है। मायावी क्षेत्र मे यह चल सकता है। परन्तु महापुरुषों के लिए धन का कोई महत्त्व नहीं। उनकी दृष्टि मे नीति और सदाचार का महत्व है। जिस समाज मे धन की पूजा है वह समाज ऊँचा नही उठ सकता। जो समाज सदाचार का सन्मान करता है, गुणियो की पूजा करता है, वह समाज फलता-फूलता है। जहाँ गुणियों, यतियो और सतियो को पूजा होती है वहाँ अभ्युदय है, उत्थान है, विकास है और प्रकाश है। जहाँ धन की पूजा है वहाँ परिणामतः पतन है। जहां धन की मारामारी है वहां धर्म को कौन पूछता है? जहा धर्म नहीं वहा गति नहीं और जहां गति नही वहां प्रगति कैसे हो सकती है? इसलिए धन के पुजारी न बनो। धर्म के उपासक बनो। धन से कोई वास्तविक सेठ नही कहा जा सकता है। वास्तविक सेठ तो वह है जो गुणों से समृद्ध हो। जहां गुणाढयता है, श्रेष्ठता है वहीं सेठाई है।

कोई व्यक्ति बुद्धिशाली है। वह अपने आप को तीव्र बुद्धिवाला मानता है। बेशक बुद्धि के क्षेत्र मे वह आगे बढ़ा हुआ है परन्तु यदि वह उस बुद्धि से झूठे झगड़े खड़ा करता है, मुकद्दमें लड़ता है सत्य को झूठ और झूठ को सत्य साबित करने का

प्रयास करता है तो समझना चाहिए कि वह बुद्धि से ज्येष्ठ तो है परन्तु श्रेष्ठ नहीं। यह कुशाग्र बुद्धि उसे पतन की ओर अभिमुख करेगी। इसलिए ज्येष्ठता की दरकार नहीं। दरकार है श्रेष्ठ बनने की। बुद्धि मिली है तो उसका सदुपयोग कर। उससे किसी की बिगड़ी को बनादे। बुद्धि की श्रेष्ठता इसी मे है कि उसका सदुपयोग किया जाय। उससे अपना और दूसरो का हित साधन किया जाय।

कोई व्यक्ति शारीरिक बल से सम्पन्न है। यदि उस बल के द्वारा वह निर्बल को सताता है तो वह बल से ज्येष्ठ होने पर भी श्रेष्ठ कहलाने का अधिकारी नहीं है। उसका वह बल पतन का कारण होता है। बल पाकर यदि निर्बलो की रक्षा की जाय, राष्ट्र का, समाज का, व्यक्ति का आततायियो और हमलावरो से बचाव किया जाय तो वह बल श्रेष्ठ है। ऐसे श्रेष्ठ बल की दरकार है। इस तरह प्रत्येक क्षेत्र मे ज्येष्ठ बनने की अपेक्षा श्रेष्ठ बनना अच्छा है।

आजकल लोग वस्तु के वास्तविक मर्म को नही पकड कर बाहर से ही–ऊपर-ऊपर से ही देख लेने के अभ्यस्त हो गये है। इसलिये श्रेष्ठ का मर्म न समझने पर भी लोग सेठ कहने–कहाने लग जाते हैं। जिसने लम्बे बाल रख लिए वह सरदार जी, जिसने सिर नंगा रख लिया वह बंगाली बाबूजी और जिसने लपेटेदार तल्लेदार पगड़ी बाँध ली वह सेठजी। भाइयो! सेठ

कहना-कहलाना इतना आसान नही है । सेठ कहने-कहलाने वालो ! सेठ का खिताब लिखने-लिखाने वालो ! सोच समझकर सेठ कहलाना या लिखना लिखाना । सेठ पद का बड़ा गुरुतर दायित्व है । उसे निभा सको तो सेठ का साइन बोर्ड लगाना। 'सेठ' नाम तो बड़े २ अक्षरो मे लिखा लो और काम करो बेईमानो के तो, यह बड़ा विचारणीय मसला हो जाता है ।

कोई ढोली (डूम) किसी सेठ के काम से बाहर जाता था । उसे पैदल ही जाना पड़ रहा था । वह मन में कह रहा था—खुदा, तुमने किसी को मोटर दी, किसी को तांगा दिया, किसी को घोडा दिया और मुझे कोई सवारी नहीं दी । अल्ला ताला तुझे मेरा भी ध्यान होना चाहिए । " वह इस भावना से इतना विह्वल हो उठा कि मुख से पुकार पुकार कर कहने लगा—या खुदा मेरी सुनाई नहीं होगी ? परमात्मा ने उसकी बात सुनी नहीं क्यो कि वह शायद कार्य मे व्यस्त था । आप लोगों ने उसके पीछे काम भी बहुत लगा रखे है न । जैन धर्म की धारणा और विचारणा के अनुसार परमात्मा ससार के रचने बिगाड़ने के प्रपञ्च मे नही फँसता है । जैन धर्म मानता है कि यह सृष्टि सदा अपने रूप मे थी, है और रहेगी । नक्शे बदलते रहते है परन्तु वस्तु कायम रहती है । खुदा इस उलझन में नहीं फँसता है परन्तु मनुष्यों ने उसे भी उलझा रखा है । आजकल के मनुष्य बड़े होशियार हैं । वे जो कुछ अच्छा कार्य करते हैं वह तो वे स्वयं करते हैं और जो बुरा हो जाता है वह ईश्वर ने किया ! यह है मानव की

होशियारी। अच्छा हुआ तो मनुष्य ने किया, बुरा हुआ तो परमात्मा ने किया! कैसी विचित्र धारणा है।

राम किसी को मारे नहीं सबसे मोटा राम।
आप ही मर जाते हैं कर कर खोटा काम॥

मानव इतना होशियार है कि वह देवी देवताओं को भी ठग लेता है। वह गंगा मे मुर्दे की हड्डियाँ डालता है और कहता है कि फूल है। फूल हो तो देवता पर चढ़ा कर देखो यह बेचारी गंगा ही है जो यह सहन करती है। इस तरह मानव ने देवता को और परमात्मा को भी ठगने की कोशिश की है। परमात्मा तो सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हैं। वह किसी का बुरा नहीं करता। खैर।

वह ढोली सवारी न देने के लिए परमात्मा को कोसता हुआ चला जा रहा था। उधर स एक थानेदार किसी कार्य से घोड़ी पर सवार होकर जा रहा था। रास्ते मे वह घोड़ी ब्या गई। उसके बछेरी हो गई। बछेरी चल नहीं सकती थी। थानेदार ने उस ढोली को जाते देखकर आवाज लगाई और बछेरी को उठाने का कहा। उसने आना-कानी करते हुए कहा—मैं तो अमुक गाँव जा रहा हूँ। थानेदार ने फटकार और धमकी बताई। मार के आगे भूत भागे। गरीब ढोली का क्या जोर चल सकता था। उसे बछेरी उठानी पडी। तब वह बोला—अल्ला ताला सुनता तो है परन्तु उल्टी सुनता है। मुझे तो सवारी चाहिए थी नीचे और उसने दी ऊपर!

कहना-कहलाना इतना आसान नहीं है। सेठ कहने-कहलाने वालो! सेठ का खिताब लिखने-लिखाने वालो! सोच समझकर सेठ कहलाना या लिखना लिखाना। सेठ पद का बड़ा गुरुतर दायित्व है। उसे निभा सको तो सेठ का साइन बोर्ड लगाना। 'सेठ' नाम तो बड़े २ अक्षरों मे लिखा लो और काम करो बेईमानो के तो, यह बड़ा विचारणीय मसला हो जाता है।

कोई ढोली (डूम) किसी सेठ के काम से बाहर जाता था। उसे पैदल ही जाना पड़ रहा था। वह मन में कह रहा था—खुदा, तुमने किसी को मोटर दी, किसी को तांगा दिया, किसी को घोड़ा दिया और मुझे कोई सवारी नहीं दी। अल्ला ताला तुझे मेरा भी ध्यान होना चाहिए।" वह इस भावना से इतना विह्वल हो उठा कि मुख से पुकार पुकार कर कहने लगा—या खुदा मेरी सुनाई नहीं होगी? परमात्मा ने उसकी बात सुनी नहीं क्यो कि वह शायद कार्य मे व्यस्त था। आप लोगों ने उसके पीछे काम भी बहुत लगा रखे है न। जैन धर्म की धारणा और विचारणा के अनुसार परमात्मा संसार के रचने बिगाड़ने के प्रपञ्च मे नहीं फँसता है। जैन धर्म मानता है कि यह सृष्टि सदा अपने रूप मे थी, है और रहेगी। नक्शे बदलते रहते है परन्तु वस्तु कायम रहती है। खुदा इस उलझन में नहीं फँसता है परन्तु मनुष्यों ने उसे भी उलझा रखा है। आजकल के मनुष्य बड़े होशियार है। वे जो कुछ अच्छा कार्य करते हैं वह तो वे स्वयं करते हैं और जो बुरा हो जाता है वह ईश्वर ने किया! यह है मानव की

होशियारी। अच्छा हुआ तो मनुष्य ने किया, बुरा हुआ तो परमात्मा ने किया! कैसी विचित्र धारणा है।

राम किसी को मारे नहीं सबसे मोटा राम।
आप ही मर जाते हैं कर कर खोटा काम॥

मानव इतना होशियार है कि वह देवी देवताओं को भी ठग लेता है। वह गंगा में मुर्दे की हड्डियाँ डालता है और कहता है कि फूल हैं। फूल हों तो देवता पर चढ़ा कर देखो यह बेचारी गंगा ही है जो यह सहन करती है। इस तरह मानव ने देवता को और परमात्मा को भी ठगने की कोशिश की है। परमात्मा तो सर्वज्ञ-सर्वदर्शी है। वह किसी का बुरा नहीं करता। खैर।

वह ढोली सवारी न देने के लिए परमात्मा को कोसता हुआ चला जा रहा था। उधर से एक थानेदार किसी कार्य से घोड़ी पर सवार होकर जा रहा था। रास्ते में वह घोड़ी व्या गई। उसके बछेरी हो गई। बछेरी चल नहीं सकती थी। थानेदार ने उस ढोली को जाते देखकर आवाज लगाई और बछेरी को उठाने का कहा। उसने आना-कानी करते हुए कहा—मैं तो अमुक गाँव जा रहा हूँ। थानेदार ने फटकार और धमकी बताई। मार के आगे भूत भागे। गरीब ढोली का क्या जोर चल सकता था। उसे बछेरी उठानी पड़ी। तब वह बोला—अल्ला ताला सुनता तो है परन्तु उल्टी सुनता है। मुझे तो सवारी चाहिए थी नीचे और उसने दी ऊपर!

मतलब यह है कि उल्टा काम न होना चाहिए। आपकी दुकान पर साइन बोर्ड तो सेठ का लगा हो और काम बेईमानी, धोखेबाजी का हो तो यह सेठाई नहीं ठगाई है। आपने सेठ का पद प्राप्त किया है तो श्रेष्ठता पैदा करो। दुखियों के प्रति सहानुभूति रखो। ईमानदारी से व्यापार करो। यदि तुम बना सकते हो तो बनाओ नहीं तो बनी को मत बिगाड़ो, तुम लिख सकते हो तो लिख दो नहीं तो लिखे को मत बिगाडो। सी सकते हो तो सीओ नहीं तो सीये हुए को मत फाड़ो। कंधे से कंधा मिला कर चलो। यदि आप सच्चे अर्थों में सेठ बन जावे तो भारत की नैया पार हो जाय। घास का तिनका भी मरती हुई गाय को बचाने वाला होता है। उसकी भी उपयोगिता है। वह भी दूसरो के काम आता है। यदि साढ़े तीन हाथ का पुतला, तीन मन भार वाला इन्सान किसी दूसरे के काम न आए तो उससे खेत में खड़ा हुआ बे-जान पुतला ही अच्छा। संस्कृत मे उस पुतले को 'चञ्चापुरुष' कहते हैं। वह बे-ज़ान पुतला भी खेत की रक्षा करता है। जब तक वह खड़ा है पशुओं को खेत में नहीं आने देता। यह नकली मनुष्य की शकल भी खेत की रक्षा का काम करती है। अगर सजीव होकर भी इन्सान अपने धर्म-बन्धुओं की, जाति की, समाज की, राष्ट्र की रक्षा नहीं करता है, उसके रहते बच्चे, बालिकाएँ महिलाएँ दाने-दाने के लिए मोहताज होकर विवश विधर्मी बनते हैं और यदि उसकी उपस्थिति में यह खेत लुट रहा है तो उससे वह निष्प्राण, बे-जान चञ्चापुरुष ही अच्छा।

धन तो कसाइयो और वेश्याओ के पास भी हो सकता है। इससे वे धन के नाते तो सेठ कहला सकते हैं परन्तु श्रेष्ठ नहीं कहला सकते। क्योकि कसाई छुरी चलाता है और वेश्या सदाचार पर छुरी चलाती है। यदि कोई व्यक्ति दुकान पर या ऑफिस मे बैठ कर कलम रूपी छुरी चलाता है तो क्या आप उसे सेठ—श्रेष्ठ कहेगे? नहीं। धन, विद्या, बल आदि किसी भी क्षेत्र मे मनुष्य ज्येष्ठ हो जाय तो इससे कुछ महत्त्व नहीं हो जाता। जब उसमे श्रेष्ठता आ जाती है तब वह महत्त्व-पूर्ण और सम्माननीय बन जाता है। ज्येष्ठता का महत्त्व नहीं श्रेष्ठता का महत्त्व है। दूध, दही और मक्खन मे ज्येष्ठता (पहले जनमने) की अपेक्षा दूध सर्वोपरि है परन्तु दूध का वह महत्त्व और सन्मान नही जो मक्खन का है। कारण स्पष्ट है कि गुण-गरिमा मे दूध से दही, और दही से मक्खन विशेष है। पहले जनमने से कोई महत्त्व-पूर्ण नही हो जाता। गुणो से महत्ता मिलती है। ज्येष्ठता का महत्त्व नहीं, महत्त्व है श्रेष्ठता का। अतएव श्रेष्ठ बनने का प्रयास करना चाहिए।

आत्मीय सुखो की उपलब्धि के लिए शास्त्रकार ने चार बातो का निरूपण किया है—(१) मनुष्यत्व (२) श्रुति (३) श्रद्धा और (४) सात्विक पुरुषार्थ। मनुष्यत्व के बारे मे कहा जा चुका है। अब श्रुति के सम्बन्ध मे कुछ कह देना चाहता हूँ।

"श्रुति" का अर्थ होता है—शास्त्र-श्रवण। प्रश्न होता है कि विविध धर्मों के विविध न्यारे २ धर्म-शास्त्र है तो कौनसा शास्त्र

मतलब
दुकान पर सा
धोखेबाजी का
पद प्राप्त किया
भूति रखो। इ
हो तो बनाओ
तो लिख दो न
सीओ नहीं तं
चलो। यदि अ
पार हो जाय
वाला होता
काम आता है
वाला इन्सान
खड़ा हुआ वे
'चञ्चापुरुष' ह
है। जब तक
वह नकली
है। अगर स
जाति की, स
बचे, बालिक
विवश विध
लुट रहा है तं

सुकना चाहिए? यह बात बड़ी टेढ़ी है। अपनी लस्सी को खट्टी कौन कहे? फिर भी हमारे पास लस्सी का जायका जानने का साधन मौजूद है। हमें जबान मिली है, जबान पर रख कर हम उसके रस का निर्णय कर सकते हैं। जिसकी लस्सी अच्छी हो उसका ग्रहण करना चाहिए और जिसकी लस्सी खट्टी हो उसे छोड़ देना चाहिए। सीधी बात है— अच्छाई जहां कहीं रही हुई हो ले लेनी चाहिए और बुराई जहां कहीं रही हो छोड़ देनी चाहिए। हमें अच्छाई से मतलब है हमें इसकी कोई दरकार नहीं कि वह किस जगह है, किसमें रही हुई है। मीठी लस्सी यदि मिट्टी के बर्तन में है तो भी वह पेय है और खट्टी लस्सी चाहे सोने के बर्तन में हो तो वह हेय है। पात्र का महत्त्व नहीं उसमें रही हुई चीज का महत्त्व है। म्यान का मोल नहीं तलवार का मोल होता है। सोने के प्याले में यदि जहरीली गैस भरी पड़ी है जिसे छू लिया जाय तो छाले पड़ जाएं और जो आँख में चली जाए तो आँख फूट जाए तो वह सोने का प्याला किस काम का? इसके विपरीत मिट्टी के प्याले में रस कुप्पिका भरी हो—जो लोहे को सोना बनाने वाली है तो बताइये आप किस प्याले को अंगीकार करेंगे? मिट्टी के प्याले को! क्यों? इसलिए कि उसमें अच्छी चीज भरी है।

भाइयो! मिट्टी के प्यालों का अपमान न करो। लोग मिट्टी के प्यालों की उपेक्षा कर उन्हें तोड़-फोड़ डालते हैं। जब उनमें दूध भरा होता है तब तक तो उन्हें साफ करते और संभालते हैं परन्तु काम निकलते ही फोड डालते हैं। परन्तु याद रखना चाहिए कि सोने-चांदी के प्याले उतने काम नहीं आते जितने

मिट्टी के प्याले काम मे आते हैं। हजारो व्यक्तियो के भोज मे क्या सोने-चांदी के प्याले काम देते हैं या ये मिट्टी के प्याले ?

अय ऊँचे नाम वालो ! ऊँची शान वालो ! ऊँची दुकान वालो ! इन 'मिट्टी के प्याले रूप हरिजनों—को अस्पृश्य समझकर उनका अनादर न करो। सोने के प्यालो के व्यामोह मे पड़कर मिट्टी के प्यालो को न ठुकराओ। सोने के प्याले वह काम नहीं दे सकते जो मिट्टी के प्याले दे सकते है। महात्मा गाधी ने अंग्रेजो की भेद नीलि को भली भांति भॉप लिया इसलिए उन्होने बडी बुद्धिमत्ता से आप से अलग होने के लिए तत्पर एक विराट समूह को बचा लिया। यदि महात्माजी ने हरिजनो को न अपनाया होता तो हिन्दु-समाज का एक विराट अंग कभी का विच्छिन्न हो गया होता ! यदि हरिजन हिन्दुओ से अलग हो जाते तो इस बँटवारे के समय क्या मिलता ? यह स्वयं विचारने की बात है। छूताछूत का सवाल गलत बुनियाद पर खड़ा हुआ है। जाति से कोइ छूत हो और कोई अछूत हो ऐसा न्याय-सगत नहीं हो सकता। कर्म से छूताछूत हो तो वह सगत है। बाह्य चीज का, सन्दूक का या पात्र का महत्त्व नहीं होता महत्त्व तो होता है उसमें रही हुई चीज का। इसी तरह जाति का महत्त्व नहीं होता, महत्त्व होता है व्यक्ति के गुणो का। एक हरिजन ईमानदारी से अपना कर्त्तव्य अदा करता है और दूसरी ओर एक ब्राह्मण बेईमानी करता है, वेश्यागमन करता हैं, धोखा देही करता है, छल-प्रपंच करता है, बताइये इन दोनो मे से कौन श्रेष्ठ है ?

सुनना चाहिए ? यह बात बड़ी टेढ़ी है। अपनी लस्सी को खट्टी कौन कहे ? फिर भी हमारे पास लस्सी का जायका जानने का साधन मौजूद है। हमे जबान मिली है, जबान पर रख कर हम उसके रस का निर्णय कर सकते हैं। जिसकी लस्सी अच्छी हो उसका ग्रहण करना चाहिए और जिसकी लस्सी खट्टी हो उसे छोड देना चाहिए। सीधी बात है— अच्छाई जहां कहीं रही हुई हो ले लेनी चाहिए और बुराई जहा कहीं रही हो छोड देनी चाहिए। हमे अच्छाई से मतलब है हमे इसकी कोई दरकार नहीं कि वह किस जगह है, किसमे रही हुई है। मीठी लस्सी यदि मिट्टी के वर्तन मे है तो भी वह पेय है और खट्टी लस्सी चाहे सोने के वर्तन मे हो तो वह हेय है। पात्र का महत्त्व नहीं उसमे रही हुई चीज का महत्त्व है। म्यान का मोल नहीं तलवार का मोल होता है। सोने के प्याले मे यदि जहरीली गैस भरी पडी है जिसे छू लिया जाय तो छाले पड़ जाएं और जो आँख मे चली जाए तो आँख फूट जाए तो वह सोने का प्याला किस काम का ? इसके विपरीत मिट्टी के प्याले में रस कुप्पिका भरी हो—जो लोहे को सोना बनाने वाली है तो बताइये आप किस प्याले को अगीकार करेंगे ? मिट्टी के प्याले को ! क्यों ? इसलिए कि उसमें अच्छी चीज भरी है।

भाइयो ! मिट्टी के प्यालों का अपमान न करो। लोग मिट्टी के प्यालों की उपेक्षा कर उन्हे तोड-फोड़ डालते हैं। जब उनमें दूध पीना होता है तब तक तो उन्हे साफ करते और सभालते हैं परन्तु काम निकलते ही फोड़ डालते हैं। परन्तु याद रखना चाहिए कि सोने-चांदी के प्याले उतने काम नहीं आते जितने

मिट्टी के प्याले काम मे आते हैं। हजारो व्यक्तियो के भोज मे क्या सोने-चांदी के प्याले काम देते है या ये मिट्टी के प्याले ?

अय ऊँचे नाम वालो ! ऊँची शान वालो ! ऊँची दुकान वालो ! इन 'मिट्टी के प्याले रूप हरिजनो—को अस्पृश्य समझकर उनका अनादर न करो। सोने के प्यालो के व्यामोह मे पड़कर मिट्टी के प्यालो को न ठुकराओ। सोने के प्याले वह काम नहीं दे सकते जो मिट्टी के प्याले दे सकते है। महात्मा गांधी ने अंग्रेजो की भेद नीति को भली भांति भॉप लिया इसलिए उन्होने बड़ी बुद्धिमत्ता से आप से अलग होने के लिए तत्पर एक विराट समूह को बचा लिया। यदि महात्माजी ने हरिजनो को न अपनाया होता तो हिन्दु-समाज का एक विराट अंग कभी का विच्छिन्न हो गया होता ! यदि हरिजन हिन्दुओ से अलग हो जाते तो इस बँटवारे के समय क्या मिलता ? यह स्वयं विचारने की बात है। छूताछूत का सवाल गलत बुनियाद पर खड़ा हुआ है। जाति से कोइ छूत हो और कोई अछूत हो ऐसा न्याय-सगत नहीं हो सकता। कर्म से छूताछूत हो तो वह सगत है। बाह्य चीज का, सन्दूक का या पात्र का महत्त्व नहीं होता महत्त्व तो होता है उसमें रही हुई चीज का। इसी तरह जाति का महत्त्व नहीं होता, महत्त्व होता है व्यक्ति के गुणो का। एक हरिजन ईमानदारी से अपना कर्त्तव्य अदा करता है और दूसरी ओर एक ब्राह्मण बेईमानी करता है, वेश्यागमन करता है, धोखा देही करता है, छल-प्रपच करता है, बताइये इन दोनो मे से कौन श्रेष्ठ है ?

प्रत्येक न्याय-प्रिय व्यक्ति मानेगा कि दुराचारी ब्राह्मण से सदाचारी हरिजन ऊँचा है, श्रेष्ठ है, बड़ा है, और सम्माननीय है।

भगवान् महावीर की खुली घोषणा है कि:—

कम्मुणा बंभणो होई, कम्मुणा हवइ खत्तिओ ।
कम्मुणा वइसो हवइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥

ब्राह्मण के कर्म करने से ब्राह्मण होता है, क्षत्रिय के कर्म करने से क्षत्रिय होता है, वैश्य के कर्म करने से वैश्य होता है और शूद्र के कर्म करने से शूद्र होता है। केवल जाति से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं होता।

प्रश्न हो सकता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में से कौन बड़ा है और कौन छोटा है ?

इसका सीधा सा उत्तर यह है कि जो अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह बजाता है वह बड़ा है और जो कर्त्तव्य-पालन नहीं करता है वह छोटा है-निकम्मा है। यदि ब्राह्मण अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता है तो उससे कर्त्तव्य पालक शूद्र लाख दर्जा ऊँचा है। गुणों की पूजा है, जाति की नहीं। दुकान में माल भरा हो तो साइन बोर्ड शोभा देता है और दुकान में माल न हो तो साइन बोर्ड की कोई शोभा नहीं होती। इसी तरह ब्राह्मण के कर्त्तव्य हैं तो तिलक, छापा, जनेऊ आदि शोभा दे सकते हैं। अन्यथा नहीं।

ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म को—आत्मा को जानता हो। आध्यात्मिक विकास का प्रतिनिधि ब्राह्मण होता है। पढ़ना-पढ़ाना, धर्माभिमुख बनना-बनाना उपासना करना-कराना इत्यादि ब्राह्मण के कर्म हैं।

देश और देशवासियो की रक्षा के लिए, समाज के लिए, जाति के लिए, इज्जत की रक्षा के लिए, जो सदा तत्पर रहता है, अन्याय का प्रतीकार करने के लिए कटिबद्ध रहता है, हमलावरो और आततायियों के उपद्रव से जो बचाता है वह क्षत्रिय है।

जीवनोपयोगी साधनो को जुटा कर विनिमय करने वाला, देश के व्यापार को समृद्ध करने वाला, आजीविका के साधन सुलभ करने वाला वैश्य है।

सेवा के क्षेत्र मे सब से आगे रहने वाला शूद्र है। इस व्यवस्था मे कहीं छोटे-बड़े का, छूत-अछूत का भेद ही नही है। समाज की सुव्यवस्था के लिए उक्त चारो वर्ग की अनिवार्य आवश्यकता होती है। सुव्यवस्था की दृष्टि से ही यह कार्य विभाजन था परन्तु धीरे २ इसने विकृत रूप ले लिया और सारी समाज-व्यवस्था मे गड़बड़ी पैदा हो गई। शक्तिशाली वर्ग ने दूसरे वर्ग को पद-दलित किया। शरीर के एक अंग ने दूसरे अंग को व्यथित किया परिणामतः शरीर का आरोग्य खतरे में पड़ गया। शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया। स्पृश्यास्पृश्य के भेद ने भारत को अत्यन्त हानि पहुँचाई है। मानव-मानव सब भाई हैं। अतः इस भेद को मिटा डालो और बड़े प्रेम से उन बिछुड़ो को गले से लगाओ।

मैने सुना है कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से पैदा हुए। क्षत्रिय भुजा से पैदा हुए, वैश्य पेट से पैदा हुए और शूद्र पैर से पैदा हुए। कोई भी दिल-दिमाग वाला व्यक्ति यह मानने को तयार न होगा कि मुख से, भुजा से, पैर से कोई पैदा होता है। लोग कह सकते हैं कि शास्त्र में ऐसा लिखा है। बेशक, शास्त्र मे लिखा है परन्तु शास्त्रकार के आशय को समझना आवश्यक है। शास्त्र-कार मूर्ख नही थे, वे सयाने थे, परन्तु उन्हे समझने वाले गलती कर बैठते है। मुख से ब्राह्मण पैदा नही हुए परन्तु ब्राह्मणत्व मुख से सम्बन्ध रखता है। भुजा से क्षत्रिय पैदा नहीं हुए परन्तु क्षत्रिय-त्व बाहु से सम्बन्ध रखता है। वैश्य पेट से पैदा नही हुए परन्तु वैश्यत्व का सम्बन्ध पेट से है। अर्थात् आजीविका के साधन सर्व साधारण को सुलभ करने से हैं। शूद्र पैर से पैदा नहीं हुए परन्तु शूद्रत्व-सेवा का सम्बन्ध विशेषतः पैर से है। शास्त्रकार का यही आशय रहा है।

शरीर के लिये मस्तक, भुजा पेट और पैर चारो उपयोगी हैं। आज वर्णाभिमानी व्यक्ति पैर को काट कर फेंक रहे है। पैर को काटने से वे लूले लंगड़े बन रहे हैं। भाइयो! नमस्कार कहां किया जाता है? चरणो में नमस्कार किया जाता है। इसमे रहस्य है। पैरो पर सारा बोझा रहता है। जो बोझा उठाते है और सेवा करते हैं वे ही पूजे जाते हैं।

सेवा अच्छी है या बुरी? सब कहेंगे-सेवा अच्छी है। सेवा करने वाला श्रेष्ठ है या नही? अवश्य श्रेष्ठ है। सेवा

अच्छी है, श्रेष्ठ है तो सेवा करने वाला बुरा-अस्पृश्य कैसे हो सकता है ? वर्ण का अभिमान करने वालो ! इस मिथ्या अभिमान को निकाल डालो। सब अपने २ स्थान पर श्रेष्ठ हैं।

हाँ, तो अच्छाई जिस किसी व्यक्ति से, जिस किसी ग्रन्थ से मिलती हो ग्रहण करने में संकोच नहीं होना चाहिए। कुरान पुराण, इंजिल, वेद, उपनिषद् जैन शास्त्र इत्यादि जिस किसी के शास्त्र में जिस किसी भाषा में जिस किसी लिपि मे अच्छाइयाँ है तो उन्हें अपनाना चाहिए और बुराइयां चाहे जिसमे हो उन्हें छोड़ना है। शायर ने कहा है:-

सीरत के हम गुलाम है सूरत हुई तो क्या
सुर्खो सफेद मिट्टी की सूरत हुई तो क्या।

शास्त्रकार ने साम्प्रदायिक शास्त्र विशेष का नाम न लेते हुए यही कहा है कि जिस शास्त्र में आदि से अन्त तक तप, क्षमा, और अहिंसा की त्रिवेणी बह रही हो वही शास्त्र पठनीय है मननीय है, और अनुशीलन करने योग्य है।

जं सोच्चा पडिवज्जंति तवं खंतिमहिंसयं

तप, क्षमा और अहिंसा की पतितपावनी, मलनाशनी त्रिमुखी मदाकिनी जिस शास्त्र मे प्रवाहित हो, वह शास्त्र हमारा शास्त्र है। बस इस कसौटी पर कसने से जो शास्त्र खरा उतरता

हो वही शास्त्र, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय-विशेष का हो पठनीय है, माननीय है और आचरणीय है। हमें तप, क्षमा और अहिंसा से प्रयोजन है। आज का मानव आपाधापी के कारण तपस्या को भूल गया है। यदि तपस्या का मंत्र अपनाया जाय तो भूखों को भोजन मिलना आसान हो जाय। पंचाग्नि तप तपना, औंधे लटक जाना, कांटों पर सो जाना आदि अकाम कायक्लेश तपस्या नहीं है। वास्तविक तपस्या तो इच्छाओं का निरोध करना है।

इच्छानिरोधस्तपः

आज का मानव तो अनन्त इच्छाओं की तृप्ति चाहता है। वह इच्छानिरोध करना नहीं चाहता परन्तु याद रखना चाहिए कि इच्छा वह चलनी है जो समुद्रों पानी उंडेल दिये जाने पर भी भरी नहीं जा सकती। इसलिए धनी-लखपति, करोड़पति, अरबपति, खरबपति बनने की इच्छा पर नियन्त्रण करना चाहिए।

श्रीमन्तों को यह ध्यान रखना चाहिए कि वे अपने धन का उचित संविभाग करें। जमाना बदलता जा रहा है। स्वेच्छा से, परोपकार की भावना से संविभाग करना आरम्भ कर दोगे तो तुम्हारा भाग भी सुरक्षित रह सकेगा। अन्यथा संविभाग तो होना है। यदि आप अपने चांदी के गिलास की सुरक्षा चाहते हैं तो दूसरे के मिट्टी के बर्त्तनों को मत फोड़ो। बर्त्तन तो चाहिएगा। यदि गरीबों का मिट्टी का बर्त्तन फोड़ोगे तो वे तुम्हारा चांदी का बर्त्तन छीन लेने का प्रयत्न करेंगे। इसलिए अपने कर्त्तव्य को और समय के प्रवाह को देखो। शान्ति का व्यवहार करो, क्लेश, वैर

विरोध न करो। क्षमा-वीर बनो। कायर बनकर अन्याय का प्रतीकार न करने का नाम क्षमा नहीं है। कायरता पाप है। कायरता छोड़कर शक्तिशाली बनो। शक्तिशाली वीर ही क्षमा कर सकता है। किसी भी जीव को दुख न दो, प्राणिमात्र के साथ मैत्री रखो यह अहिंसा है। जो शास्त्र और धर्मगुरु तप, क्षमा और अहिंसा का पाठ पढ़ाते हैं वे ही हमारे शास्त्र हैं और वे ही हमारे गुरुदेव है।

ऐसे शास्त्र का श्रवण करना, उस पर दृढ़ श्रद्धा रखना और उसके अनुसार आचरण करना—यह वह राजमार्ग है जो सीधा मोक्ष की ओर ले जाता है। इस मार्ग पर जो चलते है, प्रभु भजन करते हैं वे अपना जीवन उच्च बनाते है और इहलोक परलोक मे आनन्द ही आनन्द पाते है।

कार्तिक कृष्णा २
ता. ५-१०-५२
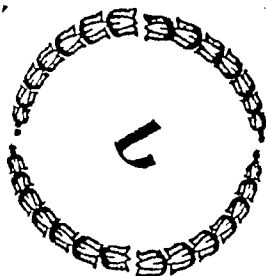
अर्हन्नाम की महिमा

अरिहंत अरिहंत अरिहंत अरिहंत।
अरिहंत अरिहंत अरिहंत भगवन्त ॥

भव्य भद्रपुरुषो और सन्नारियो !

भी आपके समक्ष अर्हन् प्रभु के गुणानुवाद रूप स्तवन का उच्चारण किया गया है। अर्हन् प्रभु का नाम बड़ा भावोत्पादक और सुप्त चेतना को जागृति प्रदान करने वाला है। यदि इस नाम की अन्तरात्मा और मर्म को समझ कर इसका उच्चारण किया जाय तो यह भव-भव की आधि-व्याधि और उपाधि का

अन्त कर शाश्वत शान्ति प्रदान करने वाला होता है। यह अर्हन्नाम वह राम-बाण औषधि है जो भव-भव के रोग को मिटाती है। यह अर्हन्नाम वह रसायन है जो आत्मा की क्षीण बनी हुई शक्ति को पुष्टता प्रदान करता है। यह अर्हन्नाम वह संजीवनी बूटी है जो आत्मा मे नव जीवन का सचार करती है। यह नाम वह मेघ है जो पाप के ताप को शान्त करता है। यह नाम वह नीर है जो विषयो की आग को बुझाता है। यह नाम वह नाव है जो संसार-सागर से पार करती है। यह नाम वह प्रकाश-पुञ्ज है जो मिथ्या-तम को दूर भगाता है। अर्हन्नाम की महिमा सागर सम गम्भीर है, मेरु तुल्य उन्नत है, आकाश वत् अनन्त, असीम और अपार है। अर्हन्नाम की महिमा और गरिमा अनुपमेय है, अनुभव-ज्ञेय है। अर्हन्नाम की सुधा सर्वोत्तम पेय है, प्रेय है और श्रेय है।

नाम उस शब्द-ध्वनि को कहते हैं जिसके द्वारा किसी वस्तु को प्रकट किया जाय। बिना नाम के काम नही चल सकता है। वस्तु का कथन करने और बोध कराने के लिए नाम का होना आवश्यक है। वस्तु हो और नाम न हो ऐसा नही हो सकता है। यदि वस्तु है तो उसका नाम भी आवश्य है। नाम और नामी सहचारी है। नामी होगा तो नाम भी होगा और नाम होगा तो नामी भी अवश्य होगा। नाम और नामी एक दूसरे के विना नहीं हो सकते। वस्तु है तो उसका नाम भी अवश्य है। यह बात अलग है कि किसी देश में, किसी भाषा मे एक ही वस्तु को

भिन्न २ शब्द-ध्वनियों द्वारा प्रकट किया जाता है। वस्तु-बोध के लिए नाम का होना आवश्यक है।

अनुयोग द्वार सूत्र में नाम तीन प्रकार के बताये गये है। वह इस प्रकार हैं:—(१) यथार्थ नाम (२) अयथार्थ नाम और (३) अर्थ शून्य नाम। जो नाम गुण को लिए हुए होता है अर्थात् गुणानुसारी होता है वह यथार्थ नाम है। जैसे जीव को जीव, चेतन, प्राणी या सत्त्व कहना। जीव भूतकाल मे जीवित था, वर्त्तमान मे जीवित है और भविष्य मे भी जीवित ही रहेगा। जीवन-धारण की अपेक्षा से जीव जीव ही रहेगा।। अतएव जीव का 'जीव' नाम सार्थक है। चेतना की अपेक्षा से 'चेतन' नाम, प्राण धारण करने की अपेक्षा से 'प्राणी' नाम और बल वीर्य की अपेक्षा से 'सत्त्व' नाम यथार्थ नाम हैं।

अयथार्थ नाम वह है जिसमें नामानुकूल गुण विद्यमान न हो। नाम कुछ और हो और काम कुछ और हो वह अयथार्थ नाम है। जैसे:—

लक्ष्मी तो कंडा बिने भीख मांगे धनपाल।
अमरसिंहजी मर गये भलो बिचारो ठनठनपाल॥

नाम तो है 'लक्ष्मी' और काम छाना (कंडा) बीनने का करती है। कहाँ तो लक्ष्मी नाम और कहाँ छाना बीनने का काम। नाम तो धनपाल और काम है भीख मांगना। नाम तो अमरसिंह

और चार जने तोक कर श्मशान मे ले जा रहे है। यह सब अयथार्थ नाम के उदाहरण है।

अर्थ-शून्य नाम वह है जिससे किसी प्रकार का अर्थ बोध नही होता है। जैसे ठनठनपाल। छींक, खासी, हांसी आदि अर्थ-शून्य ध्वनियाँ है।

अर्हन् नाम यथार्थता को लिए हुए है। 'अर्हन्' शब्द परमात्म भाव पूज्य भाव अथवा आराध्य-भाव को प्रकट करता है। 'अर्ह्' धातु का अर्थ पूजा होता है। जो पूजा के योग्य हो, जो पूजा का सर्वोत्कृष्ट पात्र हो वह अर्हन् कहलाता है। अर्हन् भगवान् से बढ़कर पूजा का सर्वोत्कृष्ट अधिकारी दूसरा कौन हो सकता है। सर्वोत्कृष्ट पूज्य आराध्य और उपास्य होने से ही अर्हन् 'अर्हन्' कहलाते है।

"अरिहत" की दूसरी व्युत्पत्ति इस प्रकार भी की जाती है। 'अरि' अर्थात् शत्रु। 'हत' यानी हनन करने वाला। दुश्मनो का हनन करने वाला 'अरिहंत' कहा जाता है। आप कहेगे—यह तो बड़ी विचित्र सी बात हुई। अरिहत भगवान् तो राग-द्वेष रूपी मल्लो को पछाड़कर सम्पूर्ण वीतराग बने होते है, वे राग द्वेष से ऊँचे उठे हुए होते है। वे समदृष्टि होते है। कोई इन्सान या हैवान, देव या दानव, चरिन्दा या परिन्दा उनका दुश्मन नही। न कोई उनके लिए दुश्मन है और न कोई मित्र ही।

ऐसी अवस्था में उन्हे शत्रु का हनन करने वाला कैसे कहा जा सकता है? शत्रु ही नहीं तो उसका हनन कैसा?

ठीक है आपका कहना। ध्यान मे रखना चाहिए कि दो प्रकार की दृष्टियाँ होती है। एक लौकिक दृष्टि और दूसरी लोकोत्तर दृष्टि। दुनियावी दृष्टिकोण से किसी वस्तु को देखना लौकिक दृष्टि है। जग व्यवहार, दुनियावी सिलसिला, सांसारिक रीति-नीति को मुख्यता देने वाली दृष्टि लौकिक दृष्टि है। आम जनता का दृष्टिकोण लोकाभिमुखी ही होता है। इस लौकिक दृष्टि से परे एक और सृष्टि-दृष्टि है जो सूक्ष्म वस्तुओं को देखती है। आंखों से देखना भी दृष्टि है और अतीन्द्रिय चीजों को गोचर करना भी दृष्टि है। पहली चर्म दृष्टि है और दूसरी ज्ञान दृष्टि है। चर्मदृष्टि वस्तु के बाह्य ढाँचे को देखती है और अन्तर्दृष्टि वस्तु की आत्मा को स्पर्श करती है। चर्मदृष्टि जिसे गोचर नहीं कर सकती ऐसी सृष्टि और विद्यमान है जिसको गोचर करने के लिए आभ्यन्तर दृष्टि की आवश्यकता है। चर्मदृष्टि मे उस दिव्य सृष्टि को गोचर नहीं किया जा सकता है। अतः बाह्य और आभ्यन्तर-दोनो प्रकार की दृष्टियों की आवश्यकता है। इनके बिना काम नहीं चल सकता। जीवन-यात्रा का सम्यक् निर्वाह नहीं हो सकता।

जिन्हें आंखें प्राप्त नहीं हैं वे कितने भाग्यहीन हैं! आँखों की कीमत वे जानते हैं जिन्हें आखें प्राप्त नहीं हैं। अय आखें वालो! आंखें बड़ी नियामत हैं। इन चक्षु रत्नों को पाकर इनका सदुपयोग करना चाहिए। परन्तु अफसोस है कि आँख वाले

आंखो का दुरुपयोग कर रहे हैं। इस दुर्लभ रत्न ज्योति को विकारोत्तेजक दृश्यों को देखने मे क्षीण कर रहे हैं। कई रूप लोलुपी व्यक्ति मर्यादा भूल कर पर स्त्रियो को विकारी भावना से घूरते हैं, यह आंखो का दुरुपयोग है। गुरुदर्शन करना, दीन दुखियों को दया भरी दृष्टि से देखना इत्यादि आंखो का सदुपयोग है। बाह्य दृष्टि का भी इतना महत्व है तो आभ्यन्तर दृष्टि का कितना अधिक महत्व है, यह सहज कल्पनीय है।

दो प्रकार के काच (दर्पण) होते है। एक दर्पण में आपको अपना या दूसरे का बाहरी हौलिया दिखाई देता है। अन्दर की बातो को प्रतिबिम्बित करने का सामर्थ्य उसमे नहीं होता। एक्स रे (X Ray) भी एक प्रकार का काच है। वह अन्दर की स्थिति को प्रतिबिम्बित कर देता है। अन्दर की विकृति को या स्थिति को बतलाने के कारण एक्स रे का महत्त्व अधिक है। वह जहां-तहां नही होता है। वह बड़े २ अस्पतालो मे ही पाया जाता है। अन्य काच की तरह वह सुलभ नहीं है। उसके लिए विशेष फीस जमा करानी होनी है। एक्स रे का जितना महत्व है उतना साधारण दर्पण का नहीं। बात यह है कि जो वस्तु सूक्ष्म रूप से वस्तु को स्पर्श करने वाली होती है वह अधिक मूल्यवान होती है। बाह्य दृष्टि की अपेक्षा अन्तर्दृष्टि बहुत सूक्ष्म तत्त्वों को गोचर करती है इसलिए अन्तर्दृष्टि का विशेष महत्व है। जो व्यक्ति अन्तर्दृष्टि से जितना अधिक देख सकता है उसका उतना ही अधिक सन्मान भी होता है। जितना महत्व अन्तर्दृष्टि वाले योगी-जनों का है उतना महत्व चर्मदृष्टि वालो का नहीं।

हाँ, तो बाह्य (लौकिक) दृष्टि वाला अन्तर्दर्शन नहीं कर सकता है इसलिए उसे अपने ही अन्दर छिपे हुए शत्रुओं का पता नहीं लगता है। वह स्थूल दृष्टि वाला होने से बाहर के व्यक्तियों को शत्रु या मित्र मान लेता है। अन्तरदृष्टि वाला आत्मा बाहर के किसी दूसरे व्यक्ति को शत्रु या मित्र नहीं समझता है। वह तो अपने में रहे हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग द्वेषादि विकारों को ही शत्रु मानता है। सुप्रस्थित आत्मा को ही वह अपना मित्र मानता है। उन्मार्गगामी आत्मा उसका शत्रु है और सन्मार्गगामी आत्मा उसका मित्र है।

" अप्पा मित्तममित्तं च "

आत्मा ही मित्र है और आत्मा ही वैरी है। यह आभ्यन्तर दृष्टि वाले की विचार धारा और मन्तव्य होता है। बाहर के शत्रु वस्तुतः शत्रु नहीं है। वास्तविक शत्रु तो आत्मा में रहे हुए विकार हैं। बाहरी शत्रुओं का हनन करना वास्तविक अरिहन्तत्व नहीं है। आत्म-विकारों का समूल हनन करना ही वास्तविक अरिहन्तत्व है। अरिहन्त देव ने राग द्वेष आदि आभ्यन्तर शत्रुओं का निर्मूल हनन कर दिया होता है इस लिए वे वास्तविक शत्रुओं का हनन करने वाले अरिहन्त पद के यथार्थ अधिकारी होते हैं।

'अरिहंत' प्राकृत शब्द का संस्कृत रूपान्तर अरूहन्त भी हो सकता है। रूह धातु का अर्थ उगना होता है। 'अ' अभाव

का सूचक है। इसका अभिप्राय यह है कि जिनका भव रूपी बीज इस प्रकार जल चुका है कि उसमें पुनः उगने का सामर्थ्य ही न रहा हो वे अरूहन्त (अरिहन्त) कहलाते हैं। राग और द्वेष ही वह बीज है जिनसे भव-(ससार) रूपी अकुर पैदा होता है। अरिहन्त राग-द्वेष को जीत कर वीतराग बन गये होते है इसलिए राग-द्वेष रूपी बीज के जल जाने पर जन्म-मरण रूप भवपरम्परा का अकुर उग ही नहीं सकता। इस प्रकार अर्हन्, अरिहन्त, नाम सार्थक है।

अरिहन्त राग-द्वेष से मुक्त हो चुके होते है इसलिए वे सशरीर होते हुए भी मुक्त-जीवन्मुक्त अथवा विदेहमुक्त कहलाते हैं। जीवन्मुक्त अथवा विदेहमुक्त का अर्थ है कि जो इस जीवन मे रहते हुए भी मुक्त हो गये है राग द्वेष के बन्धनो से छूट गये है। राग-द्वेष ही मुख्य बन्धन हैं। राग-द्वेष नहीं है तो वह संसार मे रहता हुआ भी मुक्त है और राग द्वेष विद्यमान है तो सिद्ध-शिला मे रहने पर भी पृथ्वीकायादि के जीव मुक्त नहीं है। स्थान विशेष मे रहना बन्धन नहीं है, बन्धन है राग-द्वेष। जेल मे रहना बन्धन नहीं है, बन्धन है सजा का होना। जेल का दरोगा भी जेल मे रहता है परन्तु वह कैदी नहीं है क्यों कि उस पर सजा लागू नही है। सजा की अवधि जिसने भोग ली है वह जेल में रहता हुआ भी कैदी नहीं है। वह जेल मे रहने पर भी आज़ाद है। जिसने सजा की अवधि नहीं भोगी है वह जेल तोड़ कर भाग जाय तो वह भी बाह्य दृष्टि से आजाद होने पर वस्तुतः कैदी ही

है। वह आशंका से सशंकित रहता है अतः जेल के बाहर रहने पर भी वह कैदी ही है। इसी तरह जिन आत्माओं ने राग-द्वेषादि बन्धनो से मुक्ति प्राप्त करली है वे सर्वत्र बन्धनमुक्त हैं, आजाद हैं। शरीर में रहते हुए भी वे मुक्त है और शरीर-रहित होने पर भी वे मुक्त है। राग-द्वेप के बन्धन हैं तो वह चाहे कहीं भी रहे सर्वत्र बँधा हुआ है। कोई स्थान या मकान बन्धन रूप नहीं होता है वस्तुतः बन्धन तो राग द्वेप की परिणति रूप कर्म हैं। पूर्वोपार्जित कर्मों को समभाव से भोग ले तो समय पर छुटकारा हो जाता है। पहले की सजा को इमानदारी से भोग लेने पर समय पर छुटकारा हो जाता है। परन्तु पहले अपराध की सजा पूरी नहीं हुई और नई शरारत कर ली तो सजा की परम्परा बढ़ती जाती है। इसी तरह कर्म और कर्म-फल की परम्परा बढ़ती जाती है।

लौकिक गवर्नमेन्ट अपराध की परम्परा का दण्ड अधिक से अधिक जन्म पर्यन्त दे सकती है। इससे आगे उसका वश नहीं चलता। परन्तु कर्म का शासन न केवल इस जन्म तक ही अपितु जन्म-जन्मान्तर तक चलता है। यहाँ की गवर्नमेन्ट को धोखा दिया जा सकता है। अपराधी सरकार की आँखों में धूल झोंक कर बेदाग निकल सकता है परन्तु कर्म के शासन में यह पोल नहीं चल सकती। कर्म के कानून से कोई नहीं बच सकता। कर्म को कोई धोखा नहीं दे सकता। जो जीव पाप कर्म साथ लेकर जिस किसी योनि में जाएगा वहीं उसे कर्म का फल भोगना

पड़ेगा। यहाँ के न्यायालय से कर्म (प्रकृति) का न्यायालय ऊँचा है।

यहाँ का न्यायालय तो बाह्य-व्यवहार से किसी को अपराधी घोषित करता हैं। वह अन्तरग पाप के लिए कोई विचार नहीं करता है। वचन से यदि कोई किसी का मान भंग करता है तो इसे ही गवर्नमेन्ट अपराध मानती है। शेष वाचिक अथवा मानसिक अपराधो का विचार यहाँ के न्यायालय प्रायः नहीं करते। किसी अंश तक यहाँ की गवर्नमेन्ट भी मन की स्थिति को ध्यान में अवश्य लेती है। जैसे कोई हत्या का केस चल रहा है तो न्यायाधीश यह देखता है कि किस स्थिति में अपराधी ने हत्या की है? अपराधी ने इरादा पूर्वक हत्या की है या अचानक इससे हत्या हो गई है! यदि अपराधी का हत्या करने का इरादा साबित नहीं होता है तो यहाँ की गवर्नमेन्ट भी उसे प्राण-दण्ड नहीं देती। यदि इरादा पूर्वक हत्या करना सिद्ध हो जाता है तो उस अपराधी को प्राण-दण्ड की सजा दी जाती है। यहाँ का न्यायालय अमुक अंश तक ही मानसिक या वाचिक अपराधो के लिए दण्ड दे सकता है। परन्तु कर्म का न्यायालय इससे बहुत ऊँचा और प्रामाणिक है। वहाँ कायिक, वाचिक और मानसिक सब प्रकार के अपराधो के लिए सजाएँ नियत है। वहाँ सिफारिश अथवा रिश्वत से काम नहीं चलता। यहाँ तो अपराध छिप भी जाता है और छिपा भी लिया जाता है परन्तु कर्म न्यायालय के न्यायाधीश की दृष्टि से सूक्ष्म से सूक्ष्म पाप भी छिपा नहीं रह सकता है। कर्मों की सत्ता अबाधित है।

कर्म ही जीव को अच्छी या बुरी हालत में ला पटकता है। प्राणी के अपने किये हुए कर्म ही उसकी उन्नति या अवनति के कारण होते हैं। अपने किये हुए कर्मों से ही जीव निगोद की अवस्था में अनन्त काल पर्यन्त रहता है और अपने किये हुए कर्मों से ही वह सर्वार्थ-सिद्ध विमान में जाता है। प्राणी के असीम पुण्य-कर्मों का उदय होता है तब कहीं वह नर-भव में आता है। नर-भव का प्राप्त होना बड़ा दुर्लभ है। नर-भव दुर्लभ तो अवश्य है परन्तु है अन्य सब जीव-योनियों से श्रेष्ठ। मानव-जीवन का सर्वाधिक महत्त्व है। देव योनि से भी मानव-जीवन का विशेष महत्त्व है। देव जो कार्य नहीं कर सकते हैं वह कार्य मानव कर सकता है। देवता अपना चरम और परम विकास रूप मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकते। ऐसा करने के पहले उन्हें मानव-जन्म धारण करना आवश्यक होता है। मोक्ष की प्रत्यक्ष आराधना मानव जीवन से ही हो सकती है। इसलिए देव-योनि से मानव का दर्जा ऊँचा माना गया है। कहा है:—

जो फरिश्ते करते हैं, कर सकता वह इन्सान भी।
इन्सान से होता है जो कर सकते न फरिश्ते भी॥

देवयोनि तो भोग भूमि है। वह खाने-पीने और ऐश-आराम करने की जगह है। वह कमाई करने की दुकान नहीं है। आप व्यापारी हैं। आप जानते हैं कि दुकान पर जम कर बैठना पड़ता है, तन मन मार कर काम करना पड़ता है। वहाँ चौपड़-

ताश खेलना या अन्य दिल बहलाने वाले काम नही किये जाते। वहाँ यदि दिल बहलाई की जाएगी तो कमाई नहीं होगी। कमाई करने के लिए तन मन का निग्रह करना पड़ता है। खाने-पीने और आराम करने का स्थान और है और कमाई करने का स्थान और है। मनुष्य जन्म खाने-पीने या ऐश-आराम करने का स्थान नहीं है अपितु कमाई करने का स्थान है

आप कहेगे कि महाराज ! हमारे पास पर्याप्त धन है अब कमाने की क्या आवश्यकता है ? ठीक है, आपके पास धन है, आपको सम्पत्ति मिली है तो यह कोई अनायास ही प्राप्त नही हो गई है। इसके लिए कहीं न कहीं प्रयास तो अवश्य करना पड़ा है। कारण के बिना कार्य नहीं होता यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है तो आपको धन-वैभव प्राप्त है तो इसका भी कारण होना ही चाहिए। इस जन्म मे तो आपने कोई प्रयास नही किया और बाप-दादो की सम्पत्ति के अनायास ही अधिकारी बन गये तो इससे सहज सिद्ध होता है कि आपने पहले के जन्म मे पुण्योपार्जन किया है उसका ही परिणाम है कि आपको बिना महनत के के धन-वैभव प्राप्त हो गया। ठीक है, यह आपकी पहले की कमाई है। कोई भी चतुर व्यापारी पहले की कमाई पर ही चुप-चाप नहीं बैठा रह सकता है। वह नवीन अर्जन करने का प्रयत्न करेगा ही। यदि कोई व्यक्ति नवीन उपार्जन न करे और पहले की सम्पत्ति का उपभोग करता रहे तो निश्चित है कि उसकी सम्पत्ति शीघ्र ही क्षीण हो जाएगी। नवीन उपार्जन के अभाव मे बड़ा से बड़ा

कोष भी समाप्त हो जाता है। अतः पूर्वोपार्जित वैभव पर ही आश्रित रहना बुद्धिमानी नहीं है। पहले के भव में कमाया है तो यहां भोग रहे हो। यदि यहां भोगते ही रहोगे और नवीन कमाई न करोगे तो आगे की स्थिति शोचनीय बन जाएगी। अतः समझदार और विवेकसम्पन्न व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह इस कमाई करने के मिले हुए साधन को व्यर्थ ही हाथ से न खो बैठे।

भाइयो! यह मानव-जन्म ऐश उड़ाने के लिए, दीनों का दिल दुखाने के लिए अथवा जुल्म कमाने के लिए नहीं है। यह तो वह सुअवसर और सुनहरी मौका है जिससे लाभ उठाकर भव-भवान्तर तक का भव्य निर्माण किया जा सकता है।

कहा जा सकता है कि यह तो भविष्य के गर्भ में छिपी हुई बात है। भविष्य काल और आगामी जन्म का क्या भरोसा? जप-तप, सयम, सत्य-भाषण आदि धर्म-क्रिया का फल परलोक में मिलता है इस बात पर कैसे विश्वास किया जाय? क्रिया का फल यहीं का यहीं मिल जाय तो बात मानी जा सकती है। हम तो हमारी क्रिया का फल यहीं चाहते हैं। ठीक बात है; जैन दर्शन यह मानता है कि करणी का फल इस जन्म में भी मिलता है और परलोक में भी मिलता है। करणी का फल अवश्य मिलता है। ऐसा कभी नहीं होता कि क्रिया का फल न मिले। कई बार ऐसा होता है कि क्रिया का फल तत्काल या उसी जन्म में मिल जाया करता है और कई बार क्रिया का फल अन्यत्र मिला

करता है। करणी का फल परलोक में मिलता हो या नहीं मिलता हो इस प्रश्न को थोड़ी देर के लिए अलग रख दें। तो भी व्यक्ति के शुभाशुभ कार्य का प्रारम्भिक परिणाम तो उसे यहीं प्राप्त हो जाता है। कौन कहता है कि करणी का फल यहाँ नहीं मिलता? करणी का प्राथमिक फल तो यहाँ मिलता ही है। यदि एक मनुष्य सत्य बोलता है तो उसे सत्य बोलते हुए अलौकिक शान्ति का अनुभव यहीं हो जाता है। जैसे मिठाई खाते ही मुँह मीठा हो जाता है उसी तरह सत्य बोलने वाले को सत्य-भाषण करते ही अपूर्व आत्म-संतोष का अनुभव होता है। यह करणी का प्राथमिक परिणाम ही है। दूसरी दृष्टि से देखिये—सत्य भाषण करने वाले की प्रतीति जम जाती है जिससे वह इसी जन्म में सब का विश्वास-पात्र, माननीय और आदरणीय बन जाता है। उसे किसी बात का अभाव सता नहीं सकता है। लोग उसे विश्वास-पात्र समझ कर लाखों की धरोहर सौंप देते हैं। यह सत्य-भाषण का ही तो प्रभाव है।

अब तसवीर का दूसरा पहलू भी देख लीजिए। जो व्यक्ति झूठ बोलता है वह परलोक में तो उस पाप के दण्ड का अधिकारी होगा ही परन्तु इस जन्म में ही उसे अशुभ परिणाम भोगना पड़ता है। झूठ बोलने वाले का कोई विश्वास नहीं करता। उसकी साख और प्रतिष्ठा नहीं जम सकती। वह तिरस्कार का पात्र हो जाता है। इस तरह असत्य-भाषण का अशुभ परिणाम उसे यहीं मिल जाता है। उसके माँगने पर भी उसे

वस्तु नहीं मिलती क्योंकि दुनिया को उसका विश्वास नहीं होता है। उस व्यक्ति का झूठ ही उसके मार्ग में बाधाएँ खड़ी करता है। यह करणी का प्रत्यक्ष फल नहीं तो और क्या है?

एक मनुष्य चोरी करता है तो प्रथम तो वह पकड़ा जाता है और जेलखाने की हवा खाने भेज दिया जाता है। कदाचित् वह पकड़ में नहीं आया तो उसकी आत्मा तो सदा आशंका से भयभीत रहती है। उसे सदा भय बना रहता है कि कहीं मैं पकड़ा न जाऊँ। वह पकड़ा न जाने पर भी आशंका से इतना संतप्त रहता है कि उसे तनिक भी चैन नहीं मिलती। वह स्वयमेव उसकी सजा पा लेता है।

एक मनुष्य दुराचार का सेवन करता है, पर-स्त्री-गमन करने का पाप करता है तो वह यहीं उस पाप की सजा पा लेता है। जूतों और दण्डों से उसकी मरम्मत होती है। वह लोक में निन्दित और तिरस्कृत होता है। वह अनेक गुप्त और प्रकट रोगों का शिकार बन जाता है। शास्त्रकार ने कहा है कि-जैसे सड़े हुए कान वाली कुतिया सब जगह से दुत्कार कर निकाल दी जाती है उसी तरह दुराचारी व्यक्ति भी सब जगह तिरस्कृत होता है, उसे कहीं अच्छी सभा सोसाइटी में स्थान नहीं मिलता है। इस प्रकार वह दुराचारी व्यक्ति अपने पाप का फल यहीं पा लेता है।

इसके विपरीत जो चोरी नहीं करता, परस्त्री-गमन के पाप से बचा रहता है, जो जप-तप आदि धर्म का आचरण करता है

यह सहज ही अनेक अपराधों से बच जाता है। उस पर सरकार का कोई पेनल कोड़ लागू नहीं होता है। वह सब प्रकार के राज-नीतिक एवं सामाजिक दण्ड-विधानो से बच जाता है। उसकी आत्मा को अपूर्व आनन्द का अनुभव यहीं होने लगता है। अत: धर्म क्रिया का फल परलोक मे ही मिलता है, ऐसा नहीं है बल्कि प्रत्येक शुभाशुभ क्रिया का शुभाशुभ प्राथमिक फल तो यहीं मिल जाया करता है। धर्म ऐसी चीज़ नहीं है जो केवल परलोक के ही काम की हो। स्वर्ग है, नरक है, परलोक है, इहलोक है और वहाँ जीव शुभाशुभ कर्मों का फल भोगता है यह निश्चित है। तदपि जो लोग परलोक मे आस्था नहीं रखते उन्हे भी मै यह कह देना चाहता हूँ कि धर्म केवल परलोक की चीज नही है बल्कि वह इस जीवन से सम्बन्धित है। यदि आपने धर्म को अपने जीवन मे स्थान दिया तो धर्म आपको यहीं सुख-शान्ति का साक्षात्कार करा देगा। धर्म-मय जीवन बना कि शान्ति का अलौकिक आनन्द मिल गया! धर्महीन जीवन कोई जीवन ही नहीं है। वह जीवन जीवन नहीं जिसमे धर्म का संचार न हो। इसी तरह वह धर्म धर्म ही नहीं जो जीवन को स्पर्श करने वाला न हो। वही धर्म जीवित रह सकता है जो जीवन-स्तर को ऊँचा उठाता है और वही जीवन ऊँचा उठ सकता है जो धर्म को लिए हुए होता है। जीवन धर्म-मय होना चाहिए और धर्म जीवन-स्पर्शी होना चाहिए। जीवन-धर्म और धर्म-जीवन का पारस्परिक सामंजस्य होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि धर्म मानव-जीवन क स्तर को

ऊँचा उठाता है और वह इह लोक मे भी इस जीवन में भी शान्ति प्रदान करता है।

जिस व्यक्ति का वर्त्तमान जीवन कर्त्तव्यनिष्ठ है, पुण्यमय है, धर्ममय है आलोकमय है उसका भावी जीवन भी कर्त्तव्यनिष्ठ पुण्यमय, धर्ममय, और आलोकमय ही होगा। जिसका जीवन यहाँ पापमय है उसका भावी जीवन भी पापमय होगा। जो व्यक्ति जहर खाकर जहाँ भी जाएगा वह वहाँ उससे प्रभावित होगा ही। जो धर्म का अमृत लेकर जहाँ भी जाएगा वह वहाँ अवश्य शान्ति पाएगा। यह मानवजन्म वह विश्राम-स्थान स्टेशन है जहाँ आगे मुसाफिरी के लिए अच्छा या बुरा पाथेय साथ लिया जाता है। यदि आगे की मुसाफिरी को भलीभाति तय करना है तो स्वास्थ्यप्रद आरोग्यप्रद और बलप्रद पाथेय साथ लेना चाहिए। यदि यहाँ पाथेय लेने में गफलत कर दी या जैसा तैसा पाथेय ले लिया तो अगली मुसाफिरी में कष्ट उठाना ही पड़ेगा। उस कष्ट से बचने के लिए नवीन पाथेय साथ मे लेना चाहिए।

जिस प्रकार गाड़ी को आगे चलाने के लिए उसमें तेल डाला जाता है। तेल डालना किसी का उद्देश्य नहीं होता। उद्देश्य तो होता है मंजिल पर पहुँचना। इसी तरह खाना कमाना तो जीवन-यात्रा के निर्वाह के साधन हैं। इन्हे साध्य मान लेना मूल में भूल करना है। जीवन का उद्देश्य तो मोक्ष-मार्ग की आराधना करना है। इसके लिए सेवा, परोपकार, दीन-अनाथों से सहानु-

भूति, व्रत, प्रत्याख्यान, त्याग-तप, सयम आदि साधनो का आश्रय लेना होता है। ऐसा करने के लिए शरीर को भाड़ा देना भी जरुरी होता है। इसलिए खाने-कमाने की आवश्यकता है। परन्तु खाना-कमाना ही जीवन का ध्येय नहीं है। इसके पीछे जीवन को गँवा देना भयंकर भूल है। ऐसा करना जीवन को अर्थ-शून्य और निरर्थक बनाना है।

जीवन को सार्थक बनाने के लिए अरिहन्त प्रभु का नाम-स्मरण करना चाहिए क्योंकि अरिहन्त प्रभु ने अपने जीवन को सार्थक बनाया है। प्रश्न किया जा सकता है कि नाम रटने से क्या होता है? नाम रटने मे क्या धरा है? मै कहूँगा कि जो कुछ है वह नाम मे है। नाम से बाहर कोई चीज नही है। क्या आप मुझे ऐसी वस्तु बता सकते हैं जिसका नाम न हो। सारे ससार को छान डालिये, आसमान पाताल को ढूढ लीजिए, तीनो लोक और तीना काल पर सूक्ष्म दृष्टि-पात कर जाइए आपको कोई वस्तु ऐसी नही मिलेगी जिसका नाम न हो।

एक व्यक्ति कहता है—मेरे पास यह वस्तु है। दूसरा पूछता है कि क्या है? वह कहता है—"है" (नाम नही बतलाता) दूसरा फिर पूछता है—क्या है? वह कहता है—है। तो आप ही बतलाइये उस व्यक्ति के बारे में आप क्या राय कायम करेंगे? यही न कि वह पागल है। नाम के अभाव मे वस्तु का स्वरूप व्यक्त नहीं किया जा सकता। और शब्द ध्वनि का उद्देश्य ही वस्तु स्वरूप और भावों को व्यक्त करना है। नाम के अभाव मे

यह व्यवस्था नहीं बन सकती। अतः नाम मे शक्ति है और उसकी महिमा भी अपार है।

सुख-दुख, हानि-लाभ, यश-अपयश यह सब नाम हैं। चर, अचर, जड़-चेतन, सूक्ष्म-स्थूल, साकार-निराकार सब का फोटो नाम मे खिंच जाता है। नाम के कैमरे मे सब का फोटो खिंच जाता है। संसार में सर्वत्र नाम का ही विस्तार है। जिधर भी जाते है और जिधर भी देखते हैं सर्वत्र नाम ही नाम है। पुण्य भी नाम है, पाप भी नाम है। उसके फल सुख-दुख भी नाम हैं। कर्त्ता भी नाम है, भोक्ता भी नाम है। कार्य भी नाम है, कारण भी नाम है। जीव, जड़, आत्मा परमात्मा, नवतत्त्व षड्द्रव्य सब नाम हैं। राजा-प्रजा, गुरु-चेला, चाकर-ठाकर सब नाम ही तो हैं। नाम कर्म से ही तो यह न्यारे-न्यारे घाट दृष्टिगोचर होते हैं।

इस कर्म ने किसी को दारा किसी को सिकन्दर बना दिया॥

मान लिया कि सर्वत्र नाम ही है परन्तु नाम से मिलता क्या है? मैं कहता हूँ कि मिलना भी नाम से सम्बन्धित है। नाम लिये बिना कोई चीज भी नहीं मिल सकती। एक व्यक्ति हलवाई की दुकान पर जाता है। वहाँ चांदी के वर्क लगी हुई सुन्दर सुन्दर मिठाइयों के थाल आकर्षक ढग से सजे हुए हैं। उस व्यक्ति की जीभ ललचा रही है। मुँह में पानी आ रहा है। वह कहता है-भय्या दे दो। हलवाई कहता है-ले लो, क्या लेना है? वह भला आदमी नाम नहीं लेता है। बस, कहता है—दे दो। इस प्रकार

बिना पैसे का तमाशा हो जाता है। चीजें तय्यार हैं। देने वाला देने को तय्यार है। लेने वाला भी लेना चाहता है। परन्तु मामला नहीं बन पाता है। बात क्या है? यही कि वह मिठाई का नाम नहीं ले रहा है। नाम न लेने से ही यह सारा मामला अटक गया। मिठाई का नाम न लेने से मिठाई का मिलना रुक गया। रसना मिठाई का स्वाद चाहती हैपरन्तु नाम नहीं लेती है तो उसे मिठाइ का स्वाद नहीं मिल पाता है। इसी तरह जो परमात्मा को चाहते हैं परन्तु उसका नाम नहीं लेते तो उन्हे परमात्मा कैसे मिल सकता है? हलवाई की दुकान से मन चाही मिठाई लेने के लिए उस मिठाई का नाम लेना पड़ेगा। नाम लेना आवश्यक है। इसके विना देने वाला दे नहीं सकता और लेने वाला ले नहीं सकता। परन्तु तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। मिठाई पाने के लिए मिठाई का नाम लेना आवश्यक है परन्तु नाम लेने मात्र से हलवाई की दुकान से मिठाइ नहीं मिल सकती। उसके लिए दाम भी चुकाने पड़ते है। दाम चुकाये विना नाम लेते रहने से हलवाई मिठाई नहीं दे सकता। नाम और दाम—दोनो होते है तव काम वन सकता है। परमात्म-पद की प्राप्ति के लिए अर्हन् प्रभु का नामोच्चारण, स्तवन, कीर्तन, गुणगान करना तो नाम है और उनके उपदेशो के अनुसार प्रेक्टिकल (व्यावहारिक) जीवन बनाना दाम है। मुख से परमात्मा का नाम लिया जाता है और उधर व्यावहारिक जीवन में मनमाना पाप कमाया जाता है, जालिमाना चक्कर चलाया जाता है, जुल्म ढाया जाता है तो ऐसे नाम लेने वालो से परमात्मा कोसो दूर रहता है।

नाम लेते-लेते उम्र बीत गई। मुंह में सफेद दाँत न रहे और सिर पर काले बाल न रहे फिर भी परमात्मा के दर्शन नहीं हुए। इसका कारण यही है कि नाम तो लिया जा रहा है परन्तु दाम नहीं चुकाये जा रहे हैं। नाम तो लिया जा रहा है परन्तु विषय-विष की पोटली नहीं खुली है। जब तक यह विष दूर नहीं होता है तब तक अर्हन्नाम का रसायन असर नहीं कर सकता। एक मनुष्य ताकत की दवाई खा रहा है परन्तु साथ ही अपथ्य का सेवन कर रहा है तो ताकत की दवाई अपना लाभ नहीं बता सकती। यह ताकत की दवाई का दोष नहीं है। दोष है अपथ्य सेवन का। ताकत की दवाई तो अपना काम करती है परन्तु अपथ्य सेवन उसको चीण करता जाता है। यही कारण है कि ताकत की दवाई का असर नहीं होने पाता है। ठीक इसी तरह अर्हन्नाम में अलौकिक शक्ति है परन्तु नाम लेने वाले जीवन पथ्य का विचार नहीं करते अतएव अर्हन्नाम का यथेष्ट असर नहीं हो पाता है। ताकत की दवाई लेने के पहले शरीर में घुसे हुए बुखार को दूर करना आवश्यक होता है। जब तक बुखार बना रहता है तब तक ताकत की दवाई का असर नहीं हो सकता है। प्रभु का नाम ताकत की औषधि है। इसका सेवन करने से पहले जीवन-रूपी शरीर में घुसे हुए स्थूल पाप रूपी बुखार का, अनीति रूपी जीर्ण-ज्वर का इलाज करना चाहिए। स्थूल पाप, अनीति, स्वार्थ परायणता, धन और विषयों की अति लोलुपता का परित्याग करने के साथ यदि प्रभु के नाम का उच्चारण किया जाय तो निस्संदेह वह इच्छित फल देने वाला होता है। प्रभु नाम लेने

से पहले जीवन को नीतिमय, सेवामय और परोपकार-परायण बनाने की आवश्यकता है। नीति और परोपकार की नींव पर धर्म की इमारत खड़ी होती है। यदि नीति और परोपकार रूपी नीव को मजबूत बनाने के पहले ही उस पर धर्म और प्रभु-भक्ति की इमारत खडी कर दी जाय तो वह इमारत कदापि स्थायी नहीं हो सकती।

इधर प्रभु का नाम लिया और उधर स्वार्थ-परायण बन कर दुखी-दर्दियो को दुख देने मे कमी न रखी तो यह प्रभु के नाम को कलंकित करना है और साथ ही आत्म-वंचना भी है।

संसार मे ऐसे भी मनुष्य हैं जिन्हे खाने के लिए दाना नसीब नहीं होता, जिन्हे पहनने के लिए—तन ढॉकने और लज्जा बचाने के लिए वस्त्र नहीं मिलता, जिनके रहने के लिए घास-फूस की टपरिया भी नही है। ऐसे भी मनुष्य संसार में हैं जिन्हे आवश्यकता से बहुत अधिक जीवनोपयोगी साधन-सामग्री मिली हुई है, जो ऐश-आराम के सब प्रकार के साधनो से सम्पन्न है। ससार मे एक ऐसे मनुष्य है जो पालखी मे बैठ कर—दूसरो के कंधो पर चढ़ कर चलते हैं और एक ऐसे पुण्य-हीन मनुष्य है जो पालखी उठा कर चलते हैं। वेशक, यह पुण्य पाप का खेल है। तदपि साधन-सम्पन्नो को साधन-हीनो के प्रति उदासीन या उपेक्षा भाव नहीं रखना चाहिए। सब अपने २ कर्मों का फल पाते है, यह निश्चित है तदपि ऐसा मान कर हृदय की करुणा का उत्थापन नहीं करना चाहिए। आप अभी भू-चर है, खे-चर—आसमान

में उड़ने वाले—नहीं हैं। आपको जमीन पर चलना है। अतएव आप सामाजिक और व्यावहारिक बातों की उपेक्षा नहीं कर सकते। जो लोग दीन-दुखियों की करुणा करने का उत्थापन करते हैं वे धर्म के वास्तविक मर्म को नहीं समझते।

भद्र पुरुषो ! आपको साधन प्राप्त हैं तो उनसे दूसरों को भी लाभ पहुँचाना आपका कर्त्तव्य है। जिस कूप में पानी भरा है उससे ही प्यासे प्राणी पानी की आशा रखते हैं। जो वृक्ष हरा-भरा है उससे ही पथिक-जन छाया की आशा रखते हैं। खाली कूप से और सूखे वृक्ष से कोई आशा नहीं करता। आप साधन-सम्पन्न हैं तो जरूरतमन्द लोग आप से आशा रखते हैं। आपको अपनी साधन-सामग्री का सदुपयोग करना चाहिए और उससे यथा-शक्ति दूसरों को भी लाभान्वित करना चाहिए।

ठाणांग सूत्र में नाना अपेक्षाओं से अनेक चौभंगियों का निरूपण किया गया है। उनमें यह भी बताया गया है कि चार प्रकार के मानव होते हैं:—

(१) यहाँ हैं, वहाँ नहीं
(२) वहाँ हैं, यहाँ नहीं
(३) यहाँ भी हैं और वहाँ भी हैं
(४) यहाँ भी नहीं और वहाँ भी नहीं

इसका अभिप्राय इस प्रकार है। कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं, जो पूर्वजन्म के पुण्ययोग से यहाँ साधन सम्पन्न हैं परन्तु अगले

जन्म के लिए वे नवीन पुण्योपार्जन नहीं करते। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति को प्राचीन पुण्य के प्रताप से सत्ता, शासन और अधिकार प्राप्त होगया। वह अधिकार के अहंकार से फूल-कर सत्ता के नशे मे भान भूल कर, मनमाने जोर जुल्म ढाता है, न प्रभु भजन करता है, न दान देता है न दीन-दुखियों की पुकार सुनता है तो आगे के लिए वह खाली है। पूर्व पुण्य की कमाई वह भोग रहा है और नवीन पुण्य कमाई नहीं कर रहा है अतः यहाँ तो वह भरपूर है परन्तु आगे के लिए वह खाली है। यह प्रथम भंग का अभिप्राय है। द्वितीय भग का अभिप्राय यह है कि कुछ मनुष्य इस प्रकार के होते है जो यहाँ बाह्य लौकिक साधनो की दृष्टि से खाली होते हैं परन्तु वे यहाँ सेवा परोपकार, त्याग, तप, व्रत-प्रत्याख्यानादि का आचरण कर पुण्य-कोष भर लेते हैं। वे यहाँ लौकिक द्रव्यादि से खाली होने पर भी पारलौकिक दृष्टि से भरे-पूरे होते हैं।

कुछ इस प्रकार के पुरुप होते है जो पहले भी पुण्य बाँधकर आते है और इस जन्म मे भी परोपकार सेवा आदि से नवीन पुण्य का उपार्जन करते रहते है। वे यहाँ भी भरे-पूरे होते हैं और आगे के जन्म मे भी भरे-पूरे होते हैं। यह तृतीय भग का अभिप्राय है।

कुछ पुरुप इस प्रकार के होते है जो न तो पूर्व पुण्य लेकर आते है और न नवीन पुण्योपार्जन करते है। वे खाली आते है और खाली जाते हैं। लौकिक भापा मे उन्हे "नंगे नवाब" कहते है।

भव्यात्माओ ! जीवन-ज्योति चञ्चल है। इसे बुझनेमें देर नहीं लगती। न जाने कब हवा का झोंका आ जाय और यह जगमगाती लौ गुल हो जाय। इसलिए सतत सावधान रह कर ऐसा जीवन जीना चाहिए जिससे मृत्यु का दुख न हो। जो व्यक्ति दूसरो के लिए कुछ कर गुजरते हैं, दीन-अनाथों को शांति देते हैं, परोपकार और धममय जोवन जीते हैं उन्हे मौत का डर नहीं होता। जीवन और मरण का उन्हे कोई हर्ष-शोक नहीं होता। वे कर्त्तव्यनिष्ठ होते है। जीवन-मरण तो उनके लिए खेल होता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति अपने स्वार्थ मे ही मशगूल रहता है, कुटुम्ब-परिवार, धन-दौलत में आसक्त रहता है वह मृत्यु के आने पर काँप उठता है, भयभीत हो उठता है और पश्चात्ताप का भागी बनता है। अतएव भद्र पुरुषो ! समय रहते ही चेत जाना बुद्धिमानी है।

जीवन ही चंचल है तो धन की चंचलता को बताने की तो आवश्यकता ही नहीं रहती। एक ही जीवन में करोड-पति दर-दर का भिखारी बन जाता है और भिखारी पुण्योदय स करोड़-पति बन जाता है। नक्शे बदलते रहते हैं। लक्ष्मी कभी किसी के पास स्थिर नहीं रहती। वह आज है तो कल नहीं। इसलिए बुद्धिमानी इसी में है कि अवसर पर उससे दूसरों को लाभ पहुँचाया जाय। जिस धन का उपयोग दूसरो को शान्ति पहुँचाने मे नहीं हुआ, भूखों को भोजन और नगों को वस्त्र देने में न हुआ, जो जमीन में या तिजोरी मे बंद का बंद रहा वह धन नहीं, धूल है।

अतएव हे भद्रात्माओ ! धन सम्पत्ति की अत्यन्त आसक्ति को कम करो और उसका सदुपयोग करने की ओर लक्ष्य दो। यह धन-सम्पदा त्राण और कल्याण करने वाली होती तो भूतकाल मे अनेक चक्रवर्ती, राजा-महाराजा और धन कुवेर धन सम्पदा को लात मार कर त्यागी और योगी न बने होते। भगवान् महावीर स्वयं राजकुमार थे। धन्ना और शालिभद्र अक्षय भडार के अधिपति थे। अनाथी मुनि राजकुमार थे। ये सब राज्य और धन को छोड़ कर योग मार्ग के पथिक क्यो बने ? इसीलिए कि उन्होंने समझ लिया था कि राज्य या धन त्राण रूप नहीं, कल्याण रूप नहीं है। यही समझ कर वे महापुरुष योगाभिमुख हुए। उन्होने बता दिया कि सुख भोग मे नहीं, योग मे है। भोग से योग का स्थान बहुत ऊँचा है। चक्रवर्ती सम्राट से भी योगी का दर्जा श्रेष्ठ है।

योग की साधना करना साधारण कार्य नही है। कायर व्यक्ति इसकी साधना नहीं कर सकते। महासत्व वाले वीर पुरुष ही इसको आराधना कर सकते हैं। कई लोगो की यह धारणा है कि धर्म तो कमजोरो का हथियार है। शक्ति शालियो और अमीरों को धर्माराधन की क्या आवश्यकता है ? उन्हे देवता मनाने की कोई जरूरत नहीं। देवता उन पर महरबान ही हैं। मैं समझता हूँ कि शक्ति के मद से मदमाते और धन के नशे मे चूर बने हुए व्यक्तियो का ही उक्त प्रलाप है, बौखलाहट है। धर्म कमजोरो का हथियार नहीं है वह तो शक्तिशालियो के आराधन का विषय

है। कमजोर और पामर प्राणी धर्म की वास्तविक आराधना नहीं कर सकते। भूतकाल मे अनेक चक्रवर्त्तियो ने और महाराजाओं ने धर्म का अवलम्बन लिया है। कौन कह सकता है कि वे कमजोर थे। जिन्होने छह खण्डों पर विजय प्राप्त कर चक्रवर्त्तित्व प्राप्त किया था वे क्या कमजोर थे? नहीं। वे अद्वितीय शूरवीर थे और अन्ततः वे अद्वितीय धर्म-वीर बन गये थे। जब तक पुण्य रूपी देवता की महरबानी है तब तक भले ही किसी अविवेकी को धर्माराधन की आवश्यकता महसूस न हो, परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि जिस जमीन से धान्य प्राप्त किया है वह सारा का सारा खा नहीं जाना चाहिए। उस जमीन मे फिर दाने डालने पड़ते है तभी जमीन से नवीन धान्य प्राप्त किया जा सकता है। यदि सारे के सारे दाने खा लिये और बोने के लिए कुछ न बचाया तो आगे ठनठनपाल मदनगोपाल की नौबत आये बिना नहीं रहेगी। इसीलिए चतुर किसान भूखा रहकर भी बीज के लिए दाने बचाता है। इसी प्रकार पूर्वोपार्जित पुण्य के प्रताप से किसी को सत्ता मिलती है, धन-वैभव मिलता है, शासन सूत्र हाथ में आता है, और नानाविध ऐश-आराम के साधन मिलते है परन्तु वह उसके नशे मे सब कुछ भूल जाता है और नवीन पुण्य कर्म का उपार्जन करने के बदले धर्म-कर्म का अपलाप करता है तो उसका पुण्य-कोष शीघ्र ही क्षीण हो जाता है। जिस कूप में नवीन जल आने का स्रोत न हो तो वह कूप चाहे जितना विशाल होने पर भी सूख जाएगा। इसी तरह जो नवीन पुण्योपार्जन नहीं करते उनका पुण्य शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। पुण्य समाप्त होने

पर वे दीन-हीन दशा मे आ जाते है और दुःख भोगने के लिए बाध्य होते है। तब उन्हे पश्चात्ताप की आग मे झुलसना पड़ता है। अतएव भद्र पुरुषो! महापुरुष पहले ही आपको सावधान करते है। वे धर्माचरण करने की प्रेरणा करते रहते है। इसलिए साधु पुरुषों की संगति करनी चाहिए और उनके उपदेशो पर अमल करना चाहिए।

शास्त्रों मे अनेक उदाहरण है जो प्रकट करते हैं कि भूत-काल मे बड़े२ सम्राट्, चक्रवर्ती, राजा, महाराजा साधु पुरुषो के दर्शन के लिए आते थे और भक्ति भाव से उनका उपदेश सुनते थे। उपदेश सुनकर वे अपने जीवन को उच्च बनाते थे। धर्म और पुण्य के प्रताप से ही राज्य और धन वैभव मिलता है। धर्म-कर्म और पुण्य की प्रेरणा संत-समागम से प्राप्त होती है। अमीरी से राजा-महाराजा या सेठ नही बना जा सकता है। सत पुरुषो के समागम से पुण्य और धर्माराधन किया जाता है तब कही ऐसा संयोग प्राप्त होता है। जिस वृक्ष से फल मिलते है उस वृक्ष की सेवा करनी ही चाहिए। संत समागम से धर्म और पुण्य के फल प्राप्त होते हैं। अतएव संत पुरुषो की संगति करनी चाहिए। संतो की शिक्षा से जीवन उन्नत और पावन बनता है। प्रायः आज-कल के नरेश और अधिकारी साधु जनो के सम्पर्क से दूर दूर रहते है। ऐसा नही होना चाहिए। धर्म और पुण्य के आराधन में उपेक्षा नही करनी चाहिए। जो व्यक्ति धर्म की आराधना करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। कहा है—